भारत के राष्ट्रपति



सत्यमेव जयते

विशाल भारत के राष्ट्र

विशाल भारत
के
राष्ट्रपति

रचना भोला 'यामिनी'

विजय पब्लिशर्स
5, गोला मार्किट, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

संस्करण : 20 जुलाई 2001
मूल्य : एक सौ रुपये (100.00)
आवरण सज्जा : विजय ग्राफिक्स, नई दिल्ली
शब्द संयोजन : मानस टाइपसैटर,
नयी दिल्ली-110002

मुद्रक : एच. एस. ऑफसैट प्रैस, नई दिल

VISHAL BHARAT KE RASHTRAPATI (Biogra
RACHNA BHOLA 'YAMIN

अनुक्रम

लेखिका की कलम से

विशाल भारतीय गणतंत्र में राष्ट्रपति का पद शालीन एवं गरिमामयी होता है। राष्ट्रपति ही राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। संविधान ने राष्ट्रपति को अनेक शक्तियाँ दी हैं ताकि वह अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकें व देश का शासन भली प्रकार चलता रहे।

अब तक भारत में बारह राष्ट्रपति हो चुके हैं। वर्तमान में इस पद को श्री के आर. नारायणन ने सुशोभित किया हुआ है। वे एक कर्मठ व दूरदर्शी व्यक्ति हैं।

दरअसल राष्ट्रपति के माध्यम से कोई भी हमारे देश की सभ्यता-संस्कृति का अनुमान लगा सकता है क्योंकि राष्ट्रपति भारतीय संस्कृति का दर्पण होता है। वह अपनी आदतों, बोल-चाल, विद्वत्ता, सादगी व नम्रता के द्वारा विदेशियों से मधुर सबंधों की नींव रखता है।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने सभी राष्ट्रपतियों के विषय में कतिपय जानकारी देने का प्रयास किया है। साथ ही राष्ट्रपति की चुनाव-विधि, शक्तियाँ, दायित्व, कार्यकाल, महाअभियोग, अनुपस्थिति आदि का वर्णन किया है। पाठक उसे पढ़कर लाभान्वित होंगे व हमारे महान भूतपूर्व राष्ट्रपतियों के जीवन चरित्र से प्रेरणा लेंगे। ऐसी मेरी आशा है।

20 जुलाई 2001

—रचना भोला 'यामिनी'

भूमिका

स्वतंत्र भारत के सभी राष्ट्रपति अपने-अपने क्षेत्रों की अद्वितीय प्रतिभाएं रहे हैं। राष्ट्रपति को देश का मुखिया भी कहें तो अनुचित नहीं होगा। देश के राष्ट्रपति पद के चयन हेतु एक निश्चित व योजना बद्ध प्रणाली का अनुसरण किया जाता है ताकि चयनित व्यक्ति अपनी निर्णायक क्षमता, बौद्धिक प्रतिभा, विद्वत्ता व सहजता के बल पर, भविष्य में आने वाली कठिन से कठिन समस्या का निराकरण कर सके।

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति की जो स्थिति है, उसकी तुलना में उसकी व्यावहारिक स्थिति में कुछ अन्तर है। संविधान में राष्ट्रपति को विभिन्न अधिकारों के द्वारा शक्ति प्रदान की गई है, पर वास्तव में वे शक्तियाँ मंत्रि-परिषद के पास रहती हैं, राष्ट्रपति के पास नहीं। इसका कारण है—भारत मे संसदीय शासन-प्रणाली की व्यवस्था। इस रूप में राष्ट्रपति की स्थिति इंगलैण्ड के सम्राट से मिलती-जुलती है। यह एक परम्परा-सी बन गई है। ग्लेडहिल जैसे लोगों की मान्यता है कि संकट की स्थिति में राष्ट्रपति अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है, किन्तु सच बात तो यह है कि इस समय भी उसे मंत्रि-परिषद की सलाह पर ही चलना पड़ता है।

यदि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री, दोनों ही समझौते वाली भावनाओं से युक्त हों तो परस्पर बात बढ़ती नहीं, अन्यथा मतभेद होने पर परस्पर तनाव बढ सकता है। परम्परा यही रही है कि मतभेद चाहे कितना ही क्यों न हो, पर अन्त में राष्ट्रपति को की सलाह माननी ही पड़ती है कारण कि

संसद के प्रति प्रधानमंत्री ही उत्तरदायी होता है, न कि राष्ट्रपति। यदि ये सारी शक्तियाँ व्यवहार में राष्ट्रपति को दे दी जाएँ तो तानाशाही की प्रवृत्ति उत्पन्न होने का भय होता है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि शक्तिहीन होने के कारण राष्ट्रपति अपने देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। ब्रिटेन के विभिन्न शासकों (महारानी विक्टोरिया, एडवर्ड सप्तम, जार्ज पंचम) की भाँति भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने चीन के प्रति भारत की नीति, सहकारी खेती आदि विषयों पर अपने प्रभाव का उपयोग किया। सच बात तो यह है कि हमारे यहाँ राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में परस्पर किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा नहीं रही है। इसी कारण अब तक इस सम्बन्ध में कोई विशेष समस्या सामने नहीं आ पाई है। संक्षेप में, हमारे देश में सिद्धान्तरूप में तो शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास होती हैं, पर व्यवहार में प्रधानमंत्री के पास ही रहती है।

राष्ट्रपति देश का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे एक निर्वाचक मंडल द्वारा चुने जाते हैं जिसमें संसद व राज्य तथा विधान सभा के चुने हुए सदस्य भाग लेते हैं।

राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 58 में निम्न योग्यताएँ आवश्यक बताई गई हैं।

1. राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार भारत का नागरिक होना चाहिए।
2. उम्मीदवार की आयु पैंतीस वर्ष अथवा उससे अधिक हो।
3. वह लोकसभा की सदस्यता प्राप्त करने की योग्यता रखता हो।
4. राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार किसी भी सरकारी सेवा अथवा राज्य अथवा भारत सरकार की किसी स्थानीय संस्था में, लाभ के पद पर न हो।
5. भारतीय संविधान के अनुसार यदि प्रत्याशी संसद के किसी सदन का सदस्य हो तो भी वह राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव नहीं लड़ सकता। यदि सदन का कोई सदस्य अपनी सेवा-अवधि में राष्ट्रपति चुन लिया

जाता है तो पद ग्रहण करने की तिथि से उसे संबंधित सदन की सेवा से मुक्त माना जाता है।

राष्ट्रपति का चुनाव

राष्ट्रपति भारतीय गणराज्य का प्रमुख होता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 54 के अनुसार राष्ट्रपति पद के चुनाव में संसद तथा विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य भाग लेते हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि केवल चुने हुए सदस्य ही भाग लेते हैं। मनोनीत सदस्य चुनाव में भाग लेने के अधिकारी नहीं होते।

राष्ट्रपति चुनाव की विशेष प्रणाली 'एकल संक्रमणीय मत' प्रणाली कहलाती है। मतदान गुप्त मत पत्रों द्वारा संपन्न किया जाता है। राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी का नामांकन कम से कम दस चुनाव करने वाले लोगों द्वारा प्रस्तावित व दस द्वारा अनुमोदित होता है। जमानत के रूप में कुछ राशि जमा करवाई जाती है।

एकल संक्रमणीय पद्धति, अनुग्रहात्मक मतदान कहलाती है। इसमें मतदाता मतपत्र पर पहली, दूसरी व तीसरी पसंद अंकित करता है। मतगणना में सर्वप्रथम पहली पसंद के वोटों की गिनती होती है। इस प्रकार राष्ट्रपति के चुनाव में निरपेक्ष अथवा स्पष्ट बहुमत पाने वाला प्रत्याशी विजयी घोषित किया जाता है।

सदस्यों द्वारा दिए गए मत का मूल्य भी निश्चित किया जाता है, उसी आधार पर प्राप्त मतों की गणना की जाती है। इसका सूत्र निम्न है—

$$\frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{विधान सभा के चुने हुए सदस्य}} \times \frac{1}{1000} = \text{प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य}$$

राष्ट्रपति-पद का प्रथम चुनाव : 1952

भारत के राष्ट्रपति-पद का प्रथम चुनाव 6 मई, सन् 1952 को हुआ। उस समय जनसंख्या तथा विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों की संख्या के आधार पर भारत के विभिन्न राज्यों की [illegible] के प्रत्येक निर्वाचित

सदस्य के वोट का मूल्य इस प्रकार था—

पंजाब	100
उत्तर प्रदेश	143
राजस्थान	92
दिल्ली	32
मध्य भारत	79
असम	79
बिहार	119
बम्बई	104
मध्य प्रदेश	90
मद्रास	145
उड़ीसा	103
पश्चिम बंगाल	102
हैदराबाद	101
काश्मीर	59
मैसूर	82
पेप्सू	55
सौराष्ट्र	66
ट्रावनकोर-कोचीन	79
अजमेर	24
भोपाल	28
कुर्ग	7
विंध्य प्रदेश	65
हिमाचल प्रदेश	65

इस समय सभी राज्यों की विधानसभाओं के कुल निर्वाचित स
संख्या 3 हजार 3 सौ 58 थी। इस रूप में इन सभी सदस्यों के वोट
मूल्य 3,45,251 आँका गया।

इसी प्रकार संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों

निम्नलिखित थी—

1. लोकसभा	495 सदस्य
2. राज्यसभा	204 सदस्य

इन सदस्यों के मत का मूल्य निकालने के लिए इन सदस्यों की संख्या से राज्य-विधानसभाओं के कुल मतों की संख्या को बाँटा गया, जिसके फलस्वरूप संसद के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के वोट का मूल्य 494 निश्चित हुआ।

राष्ट्रपति-पद के प्रथम चुनाव में कई उम्मीदवार मैदान में थे, जिनको प्राप्त वोटों का विवरण इस प्रकार है—

1. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	5,74,000 वोट
2. के. टी. शाह	92,827 वोट
3. एल. जी. थत्ते	2,672 वोट
4. हरिराम	1,954 वोट
5. के. के. चैटर्जी	533 वोट

इस प्रकार डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भारी बहुमत अर्थात् 84 प्रतिशत मतों से विजयी हुए व भारत के प्रथम राष्ट्रपति कहलाए। नियमानुसार राष्ट्रपति का वेतन दस हजार रुपए निर्धारित था किंतु राजेन्द्र बाबू अपनी इच्छानुसार केवल पाँच हजार रुपए ही लेते थे। कुछ समय पश्चात् उन्होंने 2500 रु० मासिक वेतन लेना आरंभ कर दिया।

राष्ट्रपति द्वारा शपथ ग्रहण

चुने जाने के पश्चात् राष्ट्रपति औपचारिक रूप से पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ ग्रहण करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश राष्ट्रपति के शपथ ग्रहण समारोह में उन्हें देश के प्रति निष्ठा व ईमानदारी की शपथ ग्रहण करवाते हैं।

शपथ ग्रहण निम्न शब्दों में की जाती है—

"मैं---(नाम)---सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक भारत के राष्ट्रपति पद का करूँगा तथा अपनी पूरी योग्यता से

संविधान और विधि का परीक्षण सरक्षण व प्रतिरक्षण करुँगा व मैं भारत की जनता की सेवा तथा कल्याण में निरत रहूँगा।"

('भारत के राष्ट्रपति' से साभार)

राष्ट्रपति का कार्यकाल

भारत के राष्ट्रपति का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। यदि वह किन्हीं कारणवश, उपराष्ट्रपति को, कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व ही त्यागपत्र दे दें अथवा संविधान के नियमों का अतिक्रमण करने के कारण उन पर महाभियोग लगाया जाए तो उनका कार्यकाल समय से पूर्व ही समाप्त हो सकता है। उपराष्ट्रपति उनके त्यागपत्र की सूचना लोकसभा अध्यक्ष तक पहुँचा देते हैं।

यदि उन्हें समुचित मत प्राप्त हों अथवा उनका उत्तराधिकारी चुना न जा सके तो कार्यकाल की अवधि स्वयं ही बढ़ जाती है। यदि पाँच वर्ष के कार्यकाल से पूर्व ही राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाए अथवा वे पद-त्याग दें तो नए राष्ट्रपति का चुनाव शेष सेवा अवधि के लिए न हो कर पाँच वर्ष के लिए ही होता है।

राष्ट्रपति की आवास सुविधा

राष्ट्रपति को मासिक वेतन व भत्तों के अतिरिक्त 'राष्ट्रपति भवन' के रूप में आवास सुविधा भी दी जाती है। यह सुविधा निःशुल्क होती है।

विशाल व रमणीक राष्ट्रपति भवन संसार के बड़े महलों नुमा भवनों में एक है। इसे सन् 1929 में वाइसराय के निवास स्थान के रूप में बनाया गया था। स्वतंत्र भारत में यह राष्ट्रपति का आवास बना। इस भवन की वास्तुकला में हिंदू, मुस्लिम व पश्चिम शैली का मिश्रण है। कहते हैं कि लाल व सफेद बलुआ पत्थर के बने इस भवन पर उस समय लगभग दो करोड़ रुपए का खर्च आया था। इस भवन में तीन सौ चालीस कक्ष हैं।

राष्ट्रपति भवन के पीछे अंग्रेजों द्वारा बनवाया गया 'मुगल गार्डन' है। गार्डन की शोभा व हरियाली देखने ही बनती है। काश्मीर के शालीमार बाग की शैली पर बना यह भवन, वर्ष में केवल एक बार साधारण जनता के लिए खोला जाता है। दुर्लभ जाति के पेड़-पौधों के लिए यह जगप्रसिद्ध है।

राष्ट्रपति व महाभियोग

राष्ट्रपति के विरुद्ध न तो वारंट जारी किया जा सकता है और न ही उन्हें कैद किया जा सकता है। भारत संघ के सभी कार्य उन्हीं के नाम पर संपन्न होते हैं परन्तु किसी भी कार्य के लिए वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होते।

यदि वे संविधान के विरुद्ध कार्य करें अथवा उनका आचरण अनुचित हो तो उन्हें महाभियोग लगा कर पदच्युत किया जा सकता है। भारतीय संविधान की धारा 61 में महाभियोग की विधि विस्तारपूर्वक बतलाई गई है।

महाभियोग चलाने का अधिकार संसद के दोनों सदनों को प्राप्त है। अभियोग प्रस्ताव रूप में प्रस्तुत किया जाता है। आरोप लगाने के लिए आवश्यक है कि उस प्रस्ताव के पक्ष में सदन के एक चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर हों। यदि राष्ट्रपति पर किसी एक सदन द्वारा महाभियोग का आरोप लगाया जाता है तो दूसरा सदन आरोप की जाँच-पड़ताल करता है। प्रस्ताव को सदन में प्रस्तुत करने हेतु 14 दिन की पूर्व सूचना आवश्यक है। यदि दूसरा सदन भी दो तिहाई बहुमत से आरोप रूपी प्रस्ताव को पारित कर देता है तो महाभियोग सिद्ध हो जाता है।

राष्ट्रपति के पास अधिकार होता है कि वे ऐसी स्थिति में आरोपों की जॉच से संबंधित कार्यवाही में भाग लें। यदि ऐसा संभव न हो तो वे अपने प्रतिनिधि द्वारा भी स्थिति स्पष्ट कर सकते हैं। प्रस्ताव स्वीकार होने की तिथि से ही राष्ट्रपति को पदच्युत कर दिया जाता है। हाँ, जाँच के दौरान वे अपने पद पर कार्य करते हुए सभी अधिकारों व शक्तियों का प्रयोग करते हैं। खुशी की बात है कि आज तक हमारे देश में ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति कभी नहीं आई।

राष्ट्रपति पद रिक्तता की स्थिति में

यदि राष्ट्रपति के कार्यकाल की अवधि में ही पद रिक्त हो जाए तो नए राष्ट्रपति के आगमन तक उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति की भूमिका निभाते हैं। राष्ट्रपति के विदेश गमन, रोगी होने पर, अवकाश लेने पर, त्यागपत्र देने पर,

महाभियोग द्वारा हटाए जाने पर अथवा मृत्यु हो जाने की स्थिति में उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति के सभी कार्य संपन्न करते हैं।

उस स्थिति में उपराष्ट्रति को वही अधिकार, वेतन, भत्ते व सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जो कि राष्ट्रपति के लिए निर्धारित हैं। राष्ट्रपति के कार्य संपन्न करते समय उपराष्ट्रपति, राज्यसभा के अध्यक्ष पद पर नहीं रह सकते। चूंकि उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के अध्यक्ष होते हैं, अतः उनके स्थान पर राज्य सभा के उपाध्यक्ष उनके कार्यों का निस्पादन करते हैं।

राष्ट्रपति पद रिक्त होने की दशा में छः माह के भीतर नए चुनाव अवश्य हो जाने चाहिए। उक्त स्थिति में यदि छः माह तक उपराष्ट्रपति के कार्य संपन्न करते रहें और उनके स्थान पर राज्य सभा के उपाध्यक्ष ही कार्य करते रहे तो उपाध्यक्ष का कार्य भार कौन संभालेगा ?

इस संवैधानिक प्रश्न के आने पर सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश ही राष्ट्रपति कहलाएँगे। उन्हें 'कार्यवाहक राष्ट्रपति' का नाम दिया गया।

राष्ट्रपति के अधिकार

हमारे संविधान में राष्ट्रपति के लिए विभिन्न अधिकारों की व्यवस्था की गई है। संविधान की धारा 53 (1) के अनुसार

"संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार या तो स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा।"

राष्ट्रपति को दिए गए अधिकार अथवा शक्तियों को दो भागों में बॉट सकते हैं। इन अधिकारों की व्याख्या देश के शांतिकाल व संकटकाल के अनुसार की गई हैं।

शांतिकाल में देश में किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं होती व राजनीतिक व्यवस्था भी सुचारू रूप से चलती है अतः ऐसे समय में राष्ट्रपति देश की प्रगति, समृद्धि व भविष्य से संबंधित योजनाओं से जुड़े अधिकारों व शक्तियों का प्रयोग करते हैं शांतिकाल में राष्ट्रपति के पास निम्न अधिकार होते हैं

कार्यपालिका संबंधित अधिकार
कानूनी अधिकार
न्यायिक अधिकार
वित्तीय अधिकार
अन्य अधिकार

1. **कार्यपालिका संबंधित अधिकार**— राष्ट्रपति के पास सर्वोच्च ाका की शक्तियाँ होती हैं। इनका प्रयोग या तो वे स्वयं करते हैं अथवा धीनस्थ अधिकारी। वे अधिकार हैं—

राष्ट्रपति के पास प्रतिरक्षा सेनाओं का मुख्य सेनापति होने का अधिकार प्राप्त है।

राष्ट्रपति देश के प्रतिनिधित्व का अधिकार रखते हैं।

वे एटार्नी जनरल की नियुक्ति का अधिकार रखते हैं।

राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करते हैं।

उन्हें राज्यपालों, वित्त आयोग के सदस्यों, उच्च व उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायधीश, भारत के नियंत्रक व महालेखा परीक्षक, राजदूतों, लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों, मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति का भी अधिकार है।

संपूर्ण भारतीय गणराज्य का प्रमुख होने के कारण शासन संबंधी कार्य उन्हीं के नाम से संपन्न किए जाते हैं।

वे एंग्लो-इंडियन समुदाय से लोकसभा के दो सदस्य मनोनीत कर सकते हैं।

उन्हें राज्य सभा के ऐसे बारह सदस्यों के मनोनयन का अधिकार है जिन्होंने समाज सेवाओं, ललित कलाओं, साहित्य व संगीत आदि क्षेत्रों में विशेष योग्यता का परिचय दिया हो।

.: द्वारा प्राप्त विधायी अधिकार

राष्ट्रपति लोकसभा व राज्यसभा के समक्ष उद्घाटन भाषण देते हैं। इस भाषण में सरकार की नीतियों व कार्यक्रमों का विवरण दिया जाता है

(2) राष्ट्रपति संसद का अधिवेशन बुला सकते हैं व स्थगित कर सकते हैं।

(3) राष्ट्रपति लोक सभा को भंग करने का अधिकार रखते हैं।

(4) वे राज्य सभा को भंग नहीं कर सकते क्योंकि वह एक स्थाई सदन है।

(5) यदि संसद का अधिवेशन न चल रहा हो तो राष्ट्रपति संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए अध्यादेश जारी कर सकते हैं। इस अध्यादेश की अवधि छः सप्ताह होती है।

(6) राष्ट्रपति की स्वीकृति व हस्ताक्षर के बिना कोई भी बिल कानून नहीं बना सकता।

(7) कोई भी राज्य संपत्ति अथवा संविधान के संबंध में राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना अधिनियम लागू नहीं कर सकता।

न्यायिक अधिकार

1. राष्ट्रपति किसी भी अपराधी के दंड को कम कर सकते हैं। इसके लिए वे मंत्रियों से परामर्श अवश्य लेते हैं।
2. वे किसी भी सार्वजनिक महत्त्व के विषय पर उच्चतम न्यायालय से परामर्श भी ले सकते हैं।
3. राष्ट्रपति न्यायालय के मुख्य न्यायधीश व न्यायधीशों को शपथ दिलवाते हैं व उनके त्यागपत्र स्वीकार करने का अधिकार रखते हैं।
4. राष्ट्रपति के पास यह भी अधिकार है कि वे मृत्युदंड पाए अपराधी की सजा को आजन्म कारावास में बदल दें।

वित्तीय अधिकार

राष्ट्रपति को कुछ वित्तीय अधिकार भी दिए गए हैं।

1. देश की आकस्मिक निधि संभालने का अधिकार संविधान द्वारा राष्ट्रपति को दिया गया है। किसी भी आकस्मिक व्यय के लिए वे धनराशि दे सकते हैं।
2. किसी भी वित्तीय विधेयक को संसद में प्रस्तावित करने से पूर्व राष्ट्रपति

की अनुशंसा आवश्यक है।

3. प्रति पाँच वर्ष पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा वित्त आयोग की नियुक्ति की जाती है। इसमें एक अध्यक्ष व चार सदस्य होते हैं। आयोग द्वारा करों की वितरण संबंधी अनुशंसा की जाती है।
4. राष्ट्रपति आयकर के बँटवारे में राज्यों का भाग निश्चित करते हैं।
5. वे वित्तीय वर्ष के प्रारंभ में वित्त मंत्री द्वारा आय-व्यय का बजट प्रस्तुत करवाते हैं।

अन्य अधिकार

(1) राष्ट्रपति वित्त आयोग, संघीय लोकसेवा आयोग व चुनाव आयोग की रिपोर्ट संसद के सामने प्रस्तुत करते हैं।

(2) मंत्रियों में कार्यों के वितरण हेतु नियम बनाने का अधिकार राष्ट्रपति को ही है।

(3) उच्चतम न्यायालय अपने नियमों के संचालन हेतु राष्ट्रपति से अनुमति लेती है।

संकटकाल में देश में असामान्य स्थितियों से निपटारे के लिए भारतीय संविधान ने राष्ट्रपति को संकटकालीन अधिकार दिए हैं ताकि किसी भी आपातकालीन स्थिति पर काबू पाया जा सके। वे संकटकालीन अधिकार तीन भागों में विभक्त किए जा सकते हैं।

(क) युद्ध, आक्रमण अथवा अशांति के समय

(ख) राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के समय

(ग) वित्तीय संकट के समय

(क) युद्ध, आक्रमण अथवा अशांति के समय

भारतीय संविधान की धारा 352 (1) के अनुसार राष्ट्रपति युद्ध, विदेशी आक्रमण व आंतरिक अशांति की संभावना होने पर 'संकटकाल' की घोषणा कर सकते हैं। संकटकाल की घोषणा के लिए वे किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। इस घोषणा को संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यूँ तो घोषणा की अवधि दो माह की होती है किन्तु लोकसभा अगर घोषणा

के समर्थन में प्रस्ताव पास कर दे तो घोषणा को छः माह से तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। सुरक्षा की दृष्टि से की गई आपातकालीन घोषणा के निम्न प्रभाव होते हैं।

1. राष्ट्रपति राज्यों की कार्यपालिका शक्तियों के प्रयोग के संबंध में आदेश जारी कर सकते हैं।
2. आपातकालीन घोषणा से राज्यों की स्वायत्तता समाप्त हो जाती है।
3. संसद देश के किसी क्षेत्र विशेष पर कानून बना सकती है।
4. केंद्र के विरुद्ध किसी भी कानून को गैरकानूनी घोषित किया जा सकता है।

(ख) राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के समय

भारतीय संविधान की धारा 356 के अंतर्गत राज्यों की शांति व सुरक्षा संबंधी अधिकार दिए गए हैं। यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि राज्य में सवैधानिक तंत्र विफल हो गया है अथवा ऐसा प्रतीत हो कि राज्य का शासन संविधान द्वारा बनाए गए कायदे-कानूनों पर नहीं चल रहा तो आपात स्थिति की घोषणा की जा सकती है।

ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति राज्य सरकार अथवा राज्यपाल के अधिकार स्वयं ले सकते हैं किंतु राज्य के विधानमंडल की शक्तियाँ नहीं ली जा सकतीं।

(ख) वित्तीय संकट के समय

भारतीय संविधान की धारा 307 के अनुसार राष्ट्रपति यदि अनुभव करे कि देश के किसी भी भाग में वित्तीय स्थायित्व या साख के लिए संकट उत्पन हो गया है तो वे वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं। इस घोषणा के लिए संसद से दो माह के भीतर स्वीकृति लेनी होती है।

वित्तीय संकट की घोषणा होने पर राष्ट्रपति राज्य को इस संबंध में कोई भी आदेश दे सकते हैं। राष्ट्रपति यदि चाहें तो राज्य सरकारों को आदेश दे सकते हैं कि वे आर्थिक विधेयकों की स्वीकृति से पूर्व उनकी स्वीकृति ले। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति संविधान की धारा 19 के अंतर्गत दी गई स्वतंत्रताओं पर आवश्यकता होने पर रोक लगा सकते हैं।

भारत के संविधान में राष्ट्रपति की स्थिति

राष्ट्रपति को भारतीय गणराज्य का प्रमुख कहा जाता है। उन्हीं के नाम

पर कार्य संपन्न होते हैं। किंतु राष्ट्रपति के पास केवल नाम मात्र की शक्तियाँ होती हैं।

संविधान की धारा 74 (1) के अनुसार—

"राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का संपादन करने में सहायता व मंत्रणा देने के लिए मंत्रि-परिषद् होगा, जिसका प्रधान, प्रधानमंत्री होगा।"

धारा 75(1) में कहा गया है कि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति द्वारा ही नियुक्त किए जाऐंगे व मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा होगी।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति की स्थिति का सैद्धांतिक व व्यवहारिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने के पश्चात् कहा था—

"संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके कारण राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सलाह मानने के लिए बँधा हो। यह आशा की जाती है कि जैसे इंग्लैंड का राजा हमेशा अपने मंत्रियों की सलाह को मानता है, वैसी ही प्रथाएँ इस देश में उत्पन्न हो जाएँगी और राष्ट्रपति सब बातों में केवल नाम मात्र शासक रहेगा।"

वास्तव में भारत में संसदीय शासन प्रणाली व्यवस्था होने के कारण संविधान द्वारा राष्ट्रपति को प्रदत्त शक्तियाँ मंत्रि-परिषद के पास रहती हैं। ऐसा भी नहीं है कि राष्ट्रपति अपने प्रभाव का उपयोग नहीं कर सकते किंतु उन्हें अंततः प्रधानमंत्री की सलाह पर ही चलना पड़ता है क्योंकि संसद के प्रति प्रधानमंत्री ही उत्तरदायी होते हैं।

भारत में आज तक ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई जब प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति में कोई मतभेद उत्पन्न हुआ हो इसलिए इस विषय में आज तक कोई समस्या नहीं आई।

हाँ, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सिद्धांत रूप में राष्ट्रपति को दी गई शक्तियाँ व अधिकार, व्यवहारिक रूप में राष्ट्रपति के पास ही रहते हैं।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

(26-1-1950—13-5-1962)

"वह न बेर हैं, जो बाहर से मीठा और अंदर से कठोर होता है, वह न बादाम हैं जो बाहर से कठोर और अंदर से कोमल होता है, वह तो अंगूर के समान हैं जो अंदर-बाहर दोनों तरफ से मीठे रस से परिपूर्ण होता है।"

यह शब्द हैं लार्ड लिनलिथगो के, जो उन्होंने भारत के प्रथम राष्ट्रपति "बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी" के लिए कहे।

भारत के एक छोटे से गाँव में जन्मे बालक ने अपनी योग्यता, असाधारण प्रतिभा व मानवीय गुणों के बल पर देश का सर्वोच्च्य पद प्राप्त किया। उनका जीवन कर्मठता, सादगी व देश-सेवा का उच्च्य दृष्टांत था।

बिहार राज्य के 'सारन' जिले के एक गाँव जीरादेई में, 3 दिसंबर, 1884 को राजेन्द्र प्रसाद जी का जन्म हुआ। पिता महादेव सहाय फारसी भाषा के विद्वान थे। आयुर्वेद विज्ञान पर उनकी गहरी पकड़ थी। इस विषय के गहन अध्ययन ने उन्हें चतुर वैद्य का दर्जा दिलवाया। निर्धन व्यक्तियों के लिए वे किसी देवता से कम न थे। ऐसा चिकित्सक जो बिना धन लिए दवा दे और चंगा करे, उन्हें कहाँ मिलता ?

बालक राजेन्द्र ने माँ व दादी का भरपूर स्नेह पाया। उन दिनों आज की सी सुविधाएँ न थीं। टी० वी०, रेडियो का जंजाल न था। अतः बालक सांझ ढलते ही सो जाते। जब तक माँ, गृह-काज से निपट कर आती, बालक राजेन्द्र आधी नींद ले चुके होते।

उनींदे राजेन्द्र को बहला-फुसला कर रात्रि भोजन करवाया जाता। संयुक्त परिवारों में प्रायः भोजन देर से होता था जब माँ बिस्तर में आती तो बालक

तरोताजा हो जाते और फिर सिलसिला आरंभ होता। रामायण की कथाओं व भजनों का, इस क्रम में माँ ने कभी बाधा नहीं आने दी। वे सहर्ष पुत्र की अभिलाषाओं को पूरा करतीं। इन पौराणिक गाथाओं के नित्य कर्म ने बालक के अवचेतन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला और एक संस्कारवान् पुरुष के बीज पनपते चले गए।

5-6 वर्ष की आयु में बालक राजेन्द्र की शिक्षा प्रारंभ हुई। मौलवी साहब, घर में तीन लड़कों को पढाने के लिए नियुक्त किये गए। राजेन्द्र जी के साथ इनके दो चचेरे भाई भी पढ़ते थे।

हँसी-मजाक, शरारतें व बाल सुलभ दिनचर्या के साथ-साथ फारसी का अक्षर ज्ञान चलता रहा। दूसरे मौलवी साहब सात-आठ माह बाद आए। लगभग दो वर्ष तक उन्होंने बालकों को पढ़ाया। राजेन्द्र जी.प्रायः "मकतब" के दिनों की यादें दोहराते थे।

अपनी आत्मकथा में वे उनके विषय में लिखते हैं—

"फारसी का जो ज्ञान हुआ, उन्हीं मौलवी साहब ने दिया। हम सब भी उनको प्यार करने लगे थे। जब घर छोड़ कर अंग्रेजी पढ़ने के लिए छपरा जाना पड़ा तो मौलवी साहब और हम लोगों को भी बड़ा दुख हुआ।"

भारतीय ग्रामीण जीवन से राजेन्द्र जी ने संस्कारों व परंपराओं की अमिट छाप पाई। तीज-त्यौहार होते अथवा रामलीला का प्रदर्शन, वे सहर्ष भाग लेते।

अपनी पुस्तक में जिस तरह से उन्होंने तत्कालीन सामाजिक वातावरण का खाका खींचा है, उसे देखने से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अपने आस-पास के जीवन से गहन आत्मीयता के सूत्र में बंधे थे।

अनन्त चतुर्दशी का व्रत उन्हें वेहद प्रिय था। इस व्रत में दोपहर को कथा-श्रवण पश्चात खीर-पूरी खाई जाती है। तत्पश्चात संध्या समय कुछ नही खाते। वच्चों के हाथों में बाँधे जाने वाले सुंदर व रंग-बिरंगे रेशम के अनन्त को वे कभी नहीं भूले।

छपरा में राजेन्द्र जी के छात्र जीवन का वास्तव में श्रीगणेश हुआ। यहाँ उन्होंने हिंदी व अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया।

सामाजिक प्रचलन के कारण महादेव जी को राजेन्द्र के विवाह की चिंता सताने लगी। शीघ्र ही रिश्ता भी पक्का हो गया। राजेन्द्र जी के भावी श्वसुर आरा में मुख्तार थे। बारात दलन-छपरा में जानी थी। करीव दो दिन का रास्ता था।

हाथी, घोड़े, ऊँट, पालकी व बैलगाड़ियों का ताँता बंध गया। वर को विशेष रूप से सुसज्जित चाँदी की पालकी पर बिठाया गया। राह में सरयू नदी पड़ती थी। सारी बारात नावों से पार हो गई किंतु हाथी महाराज नदी पार नहीं करना चाहते थे। लाख कोशिश करने पर भी वे टस से मस न हुए।

पिता जी का दिल बुझ-सा गया। पुत्र की बारात में हाथी न जाए यह बात उन्हें कचोट रही थी, तभी संयोगवश कुछ पीलवान वहाँ से गुजरे और अन्य हाथी का प्रबंध हो गया, किंतु बारात पहुँचते-पहुँचते रात के ग्यारह बज गए।

12 वर्षीय राजेन्द्र स्वभाववश सोने लगे। बड़ी कठिनाई से उन्हें जगा-जगा कर विवाह की रस्में निभाई गई। विवाह पश्चात् बारात लौट आई। बहू को एक वर्ष पश्चात्, द्विरागमन में लाया गया।

राजेन्द्र जी ने पटना से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। वे बगाल, बिहार व उड़ीसा राज्य के परीक्षार्थियों में प्रथम रहे।

कॉलेज में भी इस प्रतिभाशाली छात्र ने अपनी अद्‌भुत स्मरण शक्ति के बल पर सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। स्वदेश प्रेम की भावना तो प्रबल थी ही, कॉलेज जीवन में अनेक ऐसी प्रवृत्तियाँ भी उभर कर सामने आईं, जिन्होंने एक महान नेता के भविष्य का ढाँचा तैयार किया।

शिक्षा पूरी होने के पश्चात् वे लंगर सिंह कॉलेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए। तत्पश्चात् वे वकालत के लिए कलकत्ता हाईकोर्ट चले गए और कुछ ही दिनों में उनकी गिनती नामी-गिरामी वकीलों में की जानी लगी।

इन सब गतिविधियों के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन व परिस्थितियाँ भी उनसे अधूती न रहीं। 1905 में बंग-भंग आंदोलन हुआ। उन्होंने इसमें सक्रिय रूप से भाग लिया। अनेक गणमान्य नेताओं के भाषण सुने व भावी दिशा की रूपरेखा स्पष्ट होती गई।

सन् 1906 में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। राजेन्द्र बाबू ने वहाँ एक स्वयंसेवक के रूप में कार्य किया।

जिन दिनों वे वकालत की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे थे, उन्हीं दिनो माननीय गोखले से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुछ ही समय पूर्व गोखले जी ने "सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी" की स्थापना की थी। वे बिहार के प्रतिभावान युवकों को उसमें शामिल करना चाहते थे। उन्होंने राजेन्द्र जी से कहा

"हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, बहुत रुपए तुम पैदा कर सको, बहुत आराम और ऐश-इशरत से दिन बिताओ.....

पर मुल्क का भी दावा कुछ लड़कों पर होता है और चूँकि तुम पढ़ने में अच्छे हो इसलिए तुम पर वह दावा और भी अधिक है।"

राजेन्द्र जी उन मार्मिक वचनों से व्यथित हो उठे। देश-प्रेम की तीव्र लहर जागी किंतु परिवार व माता के मोह ने पैरों में जंजीरें डाल दीं। वह चाहते हुए भी गोखले जी की सोसायटी में शरीक न हो सके।

राजेन्द्र प्रसाद जी ने सन् 1911 में अखिल भारतीय कांग्रेस दल की सदस्यता ग्रहण की।

चम्पारन सत्याग्रह के समय उनके जीवन में कई परिवर्तन आए। वे अपनी आत्मकथा में इस विषय में लिखते हैं—

"चम्पारन में ही हमने जाति-पाँति का भेद छोड़ा... जिंदगी में सादगी भी बहुत आ गई। हम लोगों के नौकर भी एक-एक कर हटा दिए गए...।"

चम्पारन सत्याग्रह के साथ ही वे स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्यक्ष रूप से आए व संपूर्ण देश में प्रसिद्ध हो गए। पटना के सदाकत आश्रम में बिहार विद्यापीठ की स्थापना की ताकि छात्रों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हो सके।

धीरे-धीरे राजेन्द्र प्रसाद जी बिहार की राजनीतिक गतिविधियों के सूत्रधार बन गए। लोग इन्हें "बिहार का बापू" कहने लगे।

साइमन कमीशन के विरोध में राजेन्द्र प्रसाद जी के नेतृत्व में एक विशाल जनसमूह ने शांतिपूर्ण प्रदर्शन किया। सन् 1930 के नमक सत्याग्रह में भी उनकी पिटाई हुई व कुछ चोटें भी आईं। इस सत्याग्रह में भाग लेने के फलस्वरूप उन्हें छः मास कैद की सजा दी गई।

सन् 1933 में पुनः 15 माह की कैद हो गई। इस जेल-यात्रा में राजेन्द्र प्रसाद जी के दमे के रोग ने भयंकर रूप धर लिया। अनियमित दिनचर्या व अशक्त कंधों पर अनेक कार्यों का बोझ जब असहनीय हो गया तो शरीर टूट-सा गया। अभी रोगमुक्ति पूरी तरह नहीं हो पाई थी कि बिहार के कई इलाकों में भीषण भूकंप आ गया।

उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। राजेन्द्र जी अपने कृशकाय शरीर की परवाह न करते हुए भूकंप पीड़ितों की सहायता में जुट गए। उस कठिन दुख की घडी में राजेन्द्र जी ने अपनी सूझ-बूझ व तत्काल निर्णय-क्षमता का परिचय

दिया। अनेक स्वयंसेवक प्रेरित हो कर सेवा करने आ पहुँचे।

गाँधी जी ने राजेन्द्र बाबू को देशरत्न की उपाधि से विभूषित किया।

अक्टूबर, 1934 के बंबई कांग्रेस अधिवेशन में राजेन्द्र बाबू ने सभापति पद को सुशोभित किया। इसी वर्ष कांग्रेस की रजत जयंती भी मनाई गई।

8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस ने गाँधी जी के मंत्र "करो या मरो" के साथ समूचे देश को पुकारा। परिणामतः अनेक सदस्यों को गाँधी जी सहित बंदी बना लिया गया। राजेन्द्र बाबू भी बच न सके। इस बार आपको अपने जीवन के लगभग तीन वर्ष जेल की सलाखों के भीतर बिताने पड़े।

अपने कारावास जीवन में राजेन्द्र प्रसाद जी ने "दि इण्डिया डिवाइडेड" व संस्मरणों पर एक पुस्तक लिखी। 1946 में भारत में अंतरिम सरकार की स्थाना हुई; राजेन्द्र बाबू कृषि व खाद्य मंत्री मनोनीत किए गए। देश में उन दिनों अन्न संकट जोरों पर था। उन्होंने अपनी कुशलता से बिगड़ती हुई व्यवस्था को संभाल लिया।

संविधान परिषद् का गठन हुआ तो वे अध्यक्ष चुने गए। संविधान-निर्माण के पश्चात् देश में चुनाव हुए। जनता अपने हितैषियों व शुभचिंतकों से अपरिचित न थी। 26 जनवरी, 1950 को राजेन्द्र प्रसाद जी ने भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति पद को ग्रहण किया।

राष्ट्रपति भवन में भी राजेन्द्र प्रसाद जी ने अपने सरल व सादगीपूर्ण व्यवहार को नहीं छोड़ा। उनका रहन-सहन, खान-पान एक किसान की भाँति था। उन्होंने अपने वेतन दस हजार के बदले केवल ढाई हजार लेना ही स्वीकार किया। उनके विषय में नेहरू जी ने कहा है—

"राजेन्द्र प्रसाद जी के राष्ट्रपति पद पर रहने के बारह सालों का काल भारत का अच्छा युग गिना जाएगा। इस युग में हमने जो कुछ किया उनके दिशा-बोध में किया और शान से किया। यदि हम गलती करते थे तो वह हमें संभालते थे। यह बारह साल का जमाना तो उनका जमाना समझा जाएगा। जो जीवित जाति होती है, वहाँ जब अवसर आता है, कोई न कोई महान व्यक्ति पैदा कर देती है। राजेन्द्र बाबू ने अपना सिक्का उस काल पर डाला और उससे हमारा सिर ऊँचा हुआ। हिंदुस्तान की स्वतंत्रता दृढ़ता से जमी।"

राजेन्द्र बाबू राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रबल समर्थकों में एक थे। उनके मे प्रचार समिति ने भाषा के प्रचार व प्रसार में महती

योगदान दिया। भाषा के विषय में उनका कहना था—

"यदि भारत की भाषाएँ अंग्रेजी का स्थान नहीं ले सकतीं तो भारत को स्वतंत्र कराने की ऐसी आतुरता ही क्या थी?"

राजेन्द्र बाबू के साधारण व्यक्तित्व में एक ऐसी आत्मा छिपी थी जो मानव मात्र के दुख से द्रवित हो उठती थी। राष्ट्रपति भवन के द्वार सदैव आगंतुकों के लिए बाँहें फैलाए रहते थे। 1962 में उन्हें भारत के सर्वोच्च अलंकरण भारत-रत्न से विभूषित किया गया। वे बारह वर्षों तक भारत के राष्ट्रपति पद पर आसीन रहे। सन् 1962 में कार्यकाल समाप्त कर वे पटना स्थित सदाकत आश्रम में रहने लगे। 28 फरवरी 1963 को वे एक सार्वजनिक सभा को संबोधित करने जा रहे थे, एका एक उनके शरीर में शिथिलता छा गई और देखते ही देखते वे इस संसार से विदा हो गए।

अश्रुमग्न राष्ट्र ने उस महान राष्ट्र-पुरुष को श्रद्धांजलि अर्पित की।

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन

(13-5-1962—13-5-1967)

"लोकतंत्र का ढाँचा प्राप्त करना सरल है किंतु इसकी भावना प्राप्त करना सरल नहीं है, क्योंकि 'स्व' का अन्य व्यक्तियों की विभिन्न प्रकार की असीम माँगों के साथ समायोजन करना सरल नहीं है। वस्तुतः वह लोकतंत्र ही है, जिसमें विनम्रता है, अपने को दूसरे के स्थान में रखने की शक्ति है और जो यह विश्वास करने की क्षमता रखता है कि संभव है, वह गलती पर हो और उसका विरोधी ठीक हो, सत्य मार्ग पर हो।"

"डॉ० राधाकृष्णन्"

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का जन्म 5 सितंबर, 1888 को आंध्रप्रदेश के तिरुत्ताणि नामक गाँव में हुआ। राधाकृष्णन जी आगे चल कर भारतीय गणतंत्र के दूसरे राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए। उनके पिता श्री वीरस्वामी उच्चा पुरोहित का कार्य करते थे, साथ ही वे शिक्षक भी थे। कहना न होगा कि राधाकृष्णन जी को धर्म व शिक्षण के कार्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुए।

परिवार में राधाकृष्णन जी को धार्मिक वातावरण मिला। पिता ने ही नन्हे बालक को अक्षर ज्ञान आरंभ करवाया। 12 वर्ष की आयु तक वे गाँव में ही रहे। उनकी शिक्षा का आरंभ मिशनरी स्कूलों से आरम्भ हुआ।

बालक राधाकृष्णन बाल्यकाल से ही संयमी व मेधावी रहे। पढ़े हुए को गुनना व उस पर मनन करना, उन्हें विशेष रूप से प्रिय था। ईसाई धर्म प्रचारको के सान्निध्य ने आंग्ल भाषा पर असाधारण अधिकार करने की क्षमता प्रदान की इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पूर्व व पश्चिम सभ्यताओं के अनुपम

मिश्रण के बीच बालक ने शिक्षा ग्रहण की।

उसने अन्य लोगों की भाँति ईसाई धर्म की हिंदू धर्म पर श्रेष्ठता की इच्छा को कभी बल नहीं दिया अपितु ईसाईयों की अपने धर्म के प्रति निष्ठा व त्याग देख कर वह हिंदू धर्म की ओर तीव्र गति से आकर्षित हुआ।

माता-पिता के दिए भारतीय संस्कारों की अमिट छाप जीवनपर्यंत धूमिल न हुई।

वेल्लौर के वूरहीज कॉलेज में स्कूली शिक्षा का आरंभ हुआ। वहाँ से एम० ए० करने के पश्चात ये मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में भर्ती हुए। परिवार की ओर से मिलने वाली आर्थिक सहायता इतनी न थी कि कॉलेज का खर्च चलाया जा सके, फलतः राधाकृष्णन जी ट्यूशन पढ़ाने लगे।

बी० ए० के पश्चात वैकल्पिक विषय का चुनाव करना था। राधाकृष्णन जी का चचेरा भाई दर्शनशास्त्र की पुस्तकें ले आया और भावी दार्शनिक का दिशा निर्धारण उसी क्षण हो गया।

उन्हीं दिनों उन्होंने स्वामी विवेकानंद जी के भाषण सुने। भाषणों के एक-एक शब्द से सच्चे हिन्दू का परिचय मिलता था। राधाकृष्णन जी उस अनूठी आत्मानुभूति से मुग्ध हो उठे और स्वयं को हिन्दू मानने के गौरव से भर उठे।

स्वामी विवेकानंद के प्रभाव के विषय में उन्होंने स्वयं कहा—

"स्वामी विवेकानंद के अदभुत् साहस व उनकी वाग्मिता ने हिन्दू धर्म के प्रति मेरे उस अभिमान को जाग्रत किया जिस पर ईसाई मिशनरियों द्वारा अब तक बराबर आघात किया जाता रहा था।"

दर्शनशास्त्र के गंभीर अध्ययन व मनन ने इसी विषय में एम० ए० करने की प्रेरणा दी। राधाकृष्णन जी तब तक एक सुयोग्य दार्शनिक के रूप में प्रसिद्धि पा चुके थे।

केवल बीस वर्ष की आयु में उन्हें मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में दर्शन का अध्यापक नियुक्त किया गया। इस काल में उन्होंने भारतीय सभ्यता व दर्शन का पठन-पाठन किया। कई देशी-विदेशी पत्रिकाओं में उनके सुरुचिपूर्ण लेख छपने लगे और उनकी ज्ञान रूपी सुगंध चारों दिशाओं में फैलने लगी।

डॉ० विश्वेश्वरैया ने इनकी अप्रतिम योग्यता को पहचाना और मैसूर में महाराजा कॉलेज में दर्शन का प्रोफेसर नियुक्त किया। मैसूर के छात्रों ने राधाकृष्णन के रूप में ऐसे को पाया जो अपने छात्रों में से प्रत्येक को



व्यक्तिगत रूप में पहचानता था और वर्षों के अंतराल के बाद भी वह उन्हें भूला नहीं था।

उनकी विद्वत्ता से प्रभावित छात्र एक दिन पूछ ही बैठे—

"सर, क्या आपने कोई विदेशी परीक्षा पास की है या डिग्री ली है ?"

मेधावी राधाकृष्णन जी ने तेजोमय वाणी में उत्तर दिया—

"मैं यूरोप पढ़ने नहीं गया, हाँ, पढ़ाने अवश्य जाऊँगा।"

उनकी इस उक्ति व स्वाभिमानयुक्त स्वर ने छात्रों को मोहित कर दिया। दरअसल उन दिनों विदेश जाने वाले छात्रों को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। विदेशी, भारतीय प्रतिभाओं को अविलंब आश्रय दे देते और उस प्रतिभा को निखारने व संवारने का पूरा श्रेय उन्हें मिल जाता।

युवा दार्शनिक धनाभाव में उस समय पी० एच० डी० नहीं कर पाया किंतु भविष्य में अनेक विश्वविद्यालयों ने उसे डॉक्टर की मानद उपाधि से विभूषित किया।

मैसूर में बिताए तीन वर्ष, राधाकृष्णन व छात्रों के लिए विशेष महत्त्व रखते हैं, क्योंकि इसी बीच उनकी बौद्धिकता रूपी वृक्ष को फलने-फूलने का सर्वाधिक समय मिला।

छात्रों ने उनके व्याख्यानों में लंबी-चौड़ी बातों के अलावा एक और तथ्य भी पाया वह था "व्यावहारिकता।" वे छात्रों से प्रायः कहते— "आकाश में उड़ते हुए, अपने पाँव जमीन पर दृढ़ता से जमाए रखो, कभी उन्हें धरती पर से उठने मत दो।"

कलकत्ता के सर आशुतोष मुखर्जी का नाम किसी परिचय का मोहताज न था। उन्होंने अनेक महान व्यक्तित्वों को पहचाना और आगे बढ़ने का सुअवसर दिया, फिर भला राधाकृष्णन जी उनकी नजरों से क्योंकर बच पाते?

राधाकृष्णन जी को उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में दर्शन का प्रोफेसर नियुक्त किया। मैसूर के छात्र अपने प्रिय शिक्षक की विदाई से शोकाकुल हो उठे। छात्रों का अनुपम स्नेह देखते ही बनता था।

जिस दिन उन्हें जाना था, प्लेटफार्म पर ठसाठस भीड़ थी। छात्र उनकी गाड़ी को स्टेशन तक हाथों से खींच कर लाए। बंद गले के कोट, पगड़ी व धोती में सादगी व विनम्रता की मूर्ति बने राधाकृष्णन जी की आँखें भी नम हो आईं

शायद विश्व के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ था कि किसी शिक्षक व छात्रों के बीच इतनी आत्मीयता हुई हो। कलकत्ता विश्वविद्यालय मे राधाकृष्णन जी ने अध्यापन के अलावा अनेक विविध क्रियाकलापों में भाग लेना आरंभ किया। यहीं से एक शिक्षक के जीवन में प्रशासनिक योग्यता के लक्षण भी दृष्टिगोचर होने लगे।

वे कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से सन् 1936 में ब्रिटिश साम्राज्यो के विश्वविद्यालयों की कांफ्रेंस में प्रतिनिधि बनाकर भेजे गए।

हॉवर्ड विश्वविद्यालय, अमरीका में भाषणों द्वारा श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। राधाकृष्णन के अदभुत् आत्मविश्वास के आगे सब नतमस्तक हो जाते। हाँ, एक विशेषता उनमें और थी। वे एक योग्य श्रोता भी थे। विद्वानों की सभा में जब सभी अपने-अपने मतों व तर्कों पर वाद-विवाद में उलझे रहते, ऐसे में हमारे युवा प्रोफेसर चुपचाप सब सुनते रहते। जहाँ उन्हे लगता कि बोलना अति आवश्यक है, वहीं बोलते। उनके धाराप्रवाह वक्तव्यों मे कई भाषाओं व धर्मग्रंथों के उद्धरण शामिल रहते।

निर्धन छात्रों को अपने मित्रवत् शिक्षक से पुस्तकें लेने में कभी संकोच नहीं रहा। अनेक जिज्ञासु छात्र कक्षा के अतिरिक्त समय में भी राधाकृष्णन जी को घेरे रहते। वे बहुत सहजता से प्रत्येक के प्रश्नों का उत्तर देते चलते। जब कभी कोई छात्र सटीक व सारगर्भित उत्तर देता तो वे उसे शाबाशी अवश्य देते।

उनमें अपने अप्रतिम ज्ञान व जानकारी के विशाल भंडार का अहम् कभी मुखरित नहीं हुआ।

कहते हैं कि जिस व्यक्ति को आगे बढ़ना हो, प्रकृति स्वयं उसके लिए नए-नए द्वार खोल देती है। राधाकृष्णन जी को आंध्र-विश्वविद्यालय का कुलपति चुना जाना, उसी भावी प्रगति का सूचक था।

सीनेट ने विशाल भुजाओं को फैलाकर नए कुलपति का स्वागत किया। आंध्र विश्वविद्यालय में उन दिनों भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं व छात्रावास आदि का अभाव था। सन् 1931 में उन्होंने पद-भार संभाला। अध्यापन के साथ-साथ प्रशासन व प्रबंध भी उन्हीं के हाथों में था।

प्रोफेसर सर्वपल्ली राधाकृष्णन जी ने योग्य शिक्षकों की नियुक्ति की। कुछ ही समय में भवन तैयार हो गए। विज्ञान-विभाग आरंभ होने में भी अधिक समय नहीं लगा

कलकत्ता में वे अभी भी दर्शन के प्रोफेसर ही थे। उस पद का भी कुशलतापूर्वक निर्वाह होता रहा। कभी-कभी यह सोचने पर विवश हो जाती हूँ कि वे इतने अधिक कार्यों को कम समय में इतनी खूबसूरती से अंजाम केसे दे देते थे ?

छात्रावास में उन्होंने सभी जातियों व समुदाय के लिए एक ही रसोईघर की व्यवस्था कर दी। यह एक क्राँतिकारी कदम था।

महामना मालवीय जी की हार्दिक इच्छा थी कि वे राधाकृष्णन जी को काशी विश्वविद्यालय का कुलपति बनाएँ। वे स्वयं उनके पास पहुँचे और अपना प्रस्ताव रखा।

राधाकृष्णन जी ने अवैतनिक कुलपति के रूप में कार्य करना स्वीकार किया। उन्होंने इस विश्वविद्यालय की जी-जान से सेवा की। धन-संग्रह के मामले में भी वे बेहद उत्साही रहे। विश्वविद्यालय के उत्थान के लिए चंदा माँगने में कभी संकोच नहीं किया। कहते हैं कि उनकी झोली में डाली जाने वाली दक्षिणा कम से कम लाख रुपया होती थी।

जिन दिनों वे कलकत्ता में थे तो वे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पूर्वीय दर्शन के भी प्रोफेसर थे। इस प्रकार अब वे कलकत्ता, वाराणसी व ऑक्सफोर्ड तीनों स्थानों का काम देखने लगे।

सन् 1941 में वाराणसी में कार्य-व्यस्तता के कारण उन्हें कलकत्ता के पद से त्याग-पत्र देना पड़ा। यूँ तो राधाकृष्णन जी ने किसी भी प्रकार के स्वतंत्रता आंदोलन में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया किंतु वे एक महान स्वतंत्रता सेनानी व देशप्रेमी भी रहे।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के समय विश्वविद्यालय पर सरकार की कुदृष्टि पड़ी और उस पर ताला लगाने का कुचक्र भी रचा गया किंतु उन्होने सामयिक सूझ-बूझ व धैर्य का प्रयोग कर, अप्रिय स्थिति को उत्पन्न ही नहीं होने दिया।

राधाकृष्णन जी ने महात्मा गाँधी जी के अभिनंदन ग्रंथ में लिखा था—

"गाँधी जी बंधनमुक्त जीवन के मंत्रदाता हैं। उनकी असाधारण धार्मिक पवित्रता और उनके वीरोचित तेज का कोटि-कोटि मनुष्यों पर गहरा प्रभाव है। ऐसे कुछ लोग सदा मिलेंगे जो ऐसे पावन जीवन के दुर्लभ उदाहरणों से वह शक्ति पाएँगे और उनमें सत्य की वह झाँकी देखेंगे जो उन साधारण जीवन रूढ़ नैतिकता या कला विचारों और भावों मे नहीं

मिलती, जिनको आधुनिक काल के उपदेष्टा प्रस्तुत किया करते हैं।''

राधाकृष्णन जी ने एक शिक्षाशास्त्री के रूप में कई सम्मेलनों की अध्यक्षता की। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् वे सन् 1952 तक यूनेस्को में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत रहे।

सन् 1950 में वे मास्को के राजदूत नियुक्त किए गए। यह राधाकृष्णन जी के धीर-गंभीर दार्शनिक स्वभाव के लिए चुनौती भरी परीक्षा थी।

मास्को की कड़कड़ाती सर्दी में भी उन्होंने अपना सादगीपूर्ण बाना नहीं छोड़ा। अनेक नियम व कायदे-कानून थे, जिनका पालन असंभव था। उदाहरणतः रात्रि भोजों में देर तक रुकना। राजनीतिज्ञों को यह बहुत आश्चर्यजनक लगता था कि भारतीय राजदूत रात दस बजे के बाद कहीं नहीं रुकता। राधाकृष्णन जी मानते थे कि स्वस्थ शरीर के लिए रात को शीघ्र सोना व प्रातः जल्दी उठना अति आवश्यक है।

राधाकृष्णन जी व स्तालिन की परस्पर भेंट भी बहुत रोचक थी। स्तालिन ने पहली फुरसत में ही उन्हें बुलवाया। भारतीय राजदूत ने बड़ी निर्भीकता से सम्राट अशोक के रक्तपात की युद्ध-गाथा दोहराई और स्तालिन से अनुरोध किया कि वे भी उक्त सम्राट की भाँति हिंसा का मार्ग त्याग दें।

स्तालिन उनसे मिलकर प्रसन्न हुए और बाद में उन्हें एक देशभक्त कहकर सम्मान भी दिया।

सन् 1952 में राधाकृष्णन जी रूस से लौट रहे थे। विशेष रूप से विदाई भोज का आयोजन दोपहर में रखा गया। यह नियम उस व्यक्ति के लिए तोड़ा गया था जिसे हम राधाकृष्णन जी के रूप में जानते हैं।

स्तालिन उन दिनों रोग-शैय्या पर थे। उन्होंने उनसे भेंट की और कुछ क्षणों तक दोनों हृदय परम आत्मीयता में बंध गए। स्तालिन ने सजल नेत्रों से भावपूर्ण स्वर में कहा—

आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने मुझे मानव समझ कर व्यवहार किया है, दानव समझकर नहीं। आप हमें छोड़ कर जा रहे हैं, इसका मुझे दुख है। मैं तो अधिक दिन तक नहीं जी पाऊँगा किंतु चाहूँगा कि आप दीर्घायु हों।''

राधाकृष्णन जी को सन् 1952 में भारत का उपराष्ट्रपति चुना गया। उपराष्ट्रपति होने के साथ ही वह दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति बने। उन्हें साहित्य अकादमी का उपाध्यक्ष भी बनाया गया।

सन् 1954 में डा० को 'भारत रत्न' की उपाधि से सम्मानित

किया गया।

अनेक विविध रूपों के बावजूद उनका लेखक मन सदैव जाग्रत रहा। उन्होंने पश्चिमवासियों को अपने आलेखों, भाषणों व पुस्तकों के माध्यम से अहसास दिलाया कि भारत किसी भी क्षेत्र में उनसे पीछे नहीं, वरन आगे है।

धर्म, दर्शन, शिक्षा, राजनीति व गीता आदि विषयों पर उन्होने निर्बाध रूप से लेखनी चलाई। उनकी सबसे पहली पुस्तक का नाम था—"दि फिलॉसफी ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर।" उनके द्वारा लिखित व संपादित पुस्तकों की संख्या लगभग एक सौ पचास है। वे सन् 1908 से 1948 तक अविराम सृजन में लीन रहे।

भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद अपने आप में एक दुष्कर कार्य था जिसे उनके वाक्य-विन्यास, भाषा पर असाधारण अधिकार व मननशील चित्त ने सहज व सरल बना दिया।

विदेशों में उनकी पुस्तकों ने बहुत लोकप्रियता पाई। सुप्रसिद्ध लेखक एच० जी० वेल्स ने एक पुस्तक "भारतीय धर्म एवं पाश्चात्य विचार" पढ़ कर कहा था—

"हमें अपनी सारी पुस्तकें बेच कर भी यह पुस्तक खरीद लेनी चाहिए, क्योंकि यह पुस्तक हमें मनुष्य जाति द्वारा सत्य की खोज से प्राप्त ज्ञान की राह दिखाती है।"

राधाकृष्णन जी ने हिन्दू समाज के आदर्शों को दुनिया के सामने रखा। वे मानते थे कि—

"हिन्दू धर्म सिद्धांतों की एकता के आधार पर धर्मों में एकता नहीं खोजता, अपितु सामान्य जिज्ञासा में और खोज में एकता ढूँढ़ता है। यह सिद्धांत स्वीकार करते हुए कि 'सर्वोत्तम शुभ का शत्रु नहीं है, मंगल का विरोधी नहीं है, हिन्दू धर्म सब प्रकार के विश्वासों को स्वीकार करता है व उनको ऊँचे स्तर पर उठाता है।"

सन् 1957 में इन्हें पुनः उपराष्ट्रपति पद के लिए चुना गया। अनेक विदेश यात्राएँ कीं। प्रत्येक यात्रा का निष्कर्ष निकलता—दो देशों की सुखद मैत्री।

उन्होंने राज्य सभा के अध्यक्ष होने का दायित्व भी बखूबी निभाया। सदस्यों ने कभी भी अशिष्ट व्यवहार नहीं किया। सभी लोगों में एक अद्भुत सामंजस्य सूत्र था जो किसी को भी मर्यादा-च्युत होने नहीं देता था।

सन् 1962 में डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन को राष्ट्रपति पद के लिए चुना गया। यूँ तो सन् 1961 में भी वे राजेन्द्र प्रसाद जी की बीमारी व मास्को यात्रा के दौरान राष्ट्रपति रह चुके थे किंतु उन्होंने उस दौरान न तो राष्ट्रपति का वेतन लिया था और न ही राष्ट्रपति आवास में गए थे।

उनकी इस महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्ति का संसार भर में स्वागत हुआ। चीन के आक्रमण के समय राधाकृष्णन जी की तात्कालिक निर्णय क्षमता का परिचय मिला। उन्होंने भारत रक्षा कानून पुनः जारी किया व संकटकालिक घोषणा की।

एक प्रसिद्ध दार्शनिक ने उनके लिए कहा था—

"दर्शनशास्त्र को सम्मानित किया गया है। सारे संसार के विवेकशील समाज ने इस चुनाव को सराहा है।"

सन् 1963 की ब्रिटेन यात्रा के दौरान राष्ट्रपति महोदय को "आर्डर ऑफ मैरिट" नामक पदक भेंट किया गया। राष्ट्रपति महोदय एक विलक्षण पुरुष थे। इतनी व्यस्तताओं के बीच जो व्यक्ति लगभग 12 घंटे का समय अध्ययन के लिए निकाल सकता हो, वह अद्भुत नहीं तो और क्या है?

वे एक मौलिक विचारक थे। मननशील चित्त, हास्य-विनोद का सुअवसर भी नहीं गँवाता था।

छोटे बच्चों से उन्हें अनन्य स्नेह था। यदि पढ़ने के कमरे में बच्चे हो-हल्ला मचायें तब भी उनकी एकाग्रता में कोई अंतर नहीं आता था।

राष्ट्रपति बनने पर भी उन्होंने अपना पूरा वेतन लेना स्वीकार नहीं किया। वे कुल वेतन के स्थान पर केवल ढाई हजार रुपया मासिक लेते थे।

कुछ समय बाद उन्हें महसूस हुआ कि उनका राष्ट्रपति पद पर बने रहना कुछ लोगों को अखरता है। उन्होंने पद त्यागने का विचार बना लिया। बिना किसी दुविधा अथवा मोह के वह इतने महत्त्वपूर्ण स्थान को छोड़ने को तैयार हो गए।

अतः उन्होंने 9 अप्रैल, सन् 1967 में एक वक्तव्य प्रकाशित करवाया—

कुछ माह पूर्व मैंने स्पष्ट रूप से इंगित किया था कि मैं इस पद को छोड़ना चाहता हूँ। उसके पश्चात आम चुनावों के परिणामों और राज्य में विभिन्न राजनीतिक विचारों की सरकारों के बनने के फलस्वरूप विभिन्न पार्टियों के नेतागण मुझसे आग्रह करते रहे हैं कि मैं पद-त्याग न करूँ, क्योंकि देश की स्थिति संकटपूर्ण है देश के सर्वोच्च पदो के बारे में हाल में जो दो घटनाएँ

घटी हैं, उनसे मुझे हार्दिक वेदना पहुँची है और मेरे पद-त्याग के पहले निश्चय को उसने दृढ़ कर दिया है।''

राधाकृष्णन जी ने आंतरिक प्रसन्नता के साथ नए राष्ट्रपति जाकिर हुसैन जी का स्वागत किया। वह 13 मई, 1967 का दिन था।

तत्पश्चात् वे अपने जन्मस्थान मद्रास में रहने लगे। उन्हें मृत्यु से कुछ दिन पूर्व ही सात लाख रुपए के अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

17 अप्रैल, सन् 1975 को वह महामानव चिरनिद्रा में लीन हो गया।

डॉ० ज़ाकिर हुसैन

(13-5-1967—3-5-1969)

"देश के सर्वोच्च पद पर मुझे निर्वाचित करके मेरे देशवासियों ने मुझमें जो विश्वास प्रकट किया है, मुझे स्वीकार करना चाहिए कि उससे मैं अभिभूत हो उठा हूँ। और जिन परिस्थितियों में मुझे यह पद-भार दिया गया है, उससे मेरी यह भावना और बढ़ जाती है—क्योंकि मुझ पर यह भार भारत के सबसे अधिक प्रतिष्ठित सपूतों में एक; डॉ० राधाकृष्णन के बाद पड़ रहा है, जो लम्बे समय तक मेरे मार्गदर्शक, तत्त्वज्ञ और मित्र रहे हैं और जिनके आधीन पिछले पाँच वर्षों तक काम करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। मैं उनके पद्चिन्हों पर चलने का यत्न करूँगा, किंतु उनकी समानता की आशा मैं नहीं कर सकता।"

(डॉ० ज़ाकिर हुसैन)

ज़ाकिर हुसैन जी जो भारत गणराज्य के तीसरे राष्ट्रपति बने। भारत विविध धर्मो व संप्रदायों का अनोखा मेल है। जाकिर जी को भारत के सर्वोच्च पद के लिए चुना जाना ही इसका अकाट्य प्रमाण है। मुसलमान होने पर भी वे सबसे पहले एक भारतीय थे। जाकिर हुसैन जी को सदैव एक महान अध्यापक के रूप में जाना जाता रहेगा। वे राष्ट्रपति बनने से पहले एक अध्यापक थे। उन्होंने कहा था—

"मुझे राष्ट्रपति चुनकर राष्ट्र ने एक अध्यापक का सम्मान किया है।"

वास्तव में के पद की गरिमा का करना सहज नहीं

है। भावी राष्ट्र निर्माताओं की नींव तैयार करने वाले महत्त्वपूर्ण क्यों न होंगे? जाकिर जी इस विषय में कहते थे कि अगर पहली ईंट सही न हो तो उस पर सीधी दीवार खड़ी नहीं की जा सकती।

उनका जन्म हैदराबाद में 8 फरवरी, 1897 को हुआ। इनके पूर्वज अफगानिस्तान से आ कर उत्तरप्रदेश के फर्रूखाबाद जिले के कायमगंज नामक कस्बे में आ बसे थे। इनके पिता फिदा हुसैन जी रियासत के जाने-माने वकीलों में एक थे। उनकी ईमानदारी की कसमें खाई जाती थीं किन्तु अफसोस कि वह अधिक समय तक अपने नेक खयालों से संसार को रोशन नहीं कर पाए। केवल उनतालीस वर्ष की अल्प आयु में ही वह चल बसे।

नौ वर्षीय ज़ाकिर जी को उनकी माँ कायमगंज ले आईं। उन्होंने बच्चों के पालन-पोषण में कोई कमी न आने दी।

सन् 1911 में ज़ाकिर जी छात्रवृत्ति की परीक्षा देने के लिए आगरा गए। उन्हीं दिनों प्लेग की महामारी फैली हुई थी। ज़ाकिर जब लौटे तो समाचार पा कर सन्न रह गए। उनका पूरा परिवार महामारी की भेंट चढ़ गया था।

माँ ने अपने अंतिम समय में भी पुत्र को बुलाना नहीं चाहा। वे नहीं चाहती थी कि अंतिम दर्शन के कारण उनके पुत्र का भविष्य ही दाँव पर लग जाए।

इस दुखःभरी घटना को याद करते हुए ज़ाकिर जी ने कहा था— ''जिन दिनों मैं आगरा परीक्षा देने गया था, तब कायमगंज में प्लेग फैला। हमारे घर की सब औरतें मर गईं। घर में कोई आदमी न था। मेरा छोटा भाई भी गुजर गया। जब मैं आगरा से लौटा तो स्टेशन पर घरवालों में से कोई भी नहीं था और न ही कोई सवारी ले कर आया था। मैं पैदल घर गया तो देखा कि घर के दरवाजे बन्द हैं। सुनसान देखकर मैं चौंक उठा। मेरे सिर से माँ का साया उठ गया था। मैंने अपने को असहाय पाया। वह जिन्दा थी, तभी से हम भाईयों ने अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा। मेरी माँ कहा करती थीं, ''अपने आप काम करो, पुरखों का नाम करो। मैं इस बात को कभी नहीं भूला।''

माँ की मृत्यु के पश्चात् ज़ाकिर जी ने प्रारंभिक शिक्षा इटावा में ही ग्रहण की। इन दिनों ज़ाकिर जी का परिचय एक दिव्य व्यक्तित्व से हुआ। हुसैन सूफी हसन शाह जी एक धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके सान्निध्य में ज़ाकिर ने दयालुता, उदारता, सेवा, करुणा आदि गुणों को ग्रहण किया।

उस्ताद के उसूलों को चेले ने निभाया अच्छी पुस्तकों के

पठन-पाठन की प्रेरणा भी यहीं से मिली। मैट्रिक की परीक्षा पास कर वे अलीगढ के मुस्लिम एंग्लो ओरियण्टल कॉलेज में दाखिल हुए।

स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने तक ज़ाकिर जी एक ऐसी युवा शक्ति के रूप में उभर चुके थे जो अपने प्रतिद्वंदियों को झुकाना जानती है। हिंसा से नहीं अपितु अपने शील, संयम व वाक्पटुता के बल से। वे "रिप" उपनाम से नियमित लेखन भी करते थे।

एम० एम० की पढ़ाई के समय ज़ाकिर जी अपने युवा छात्रों में काफी लोकप्रिय हो गए थे। वे कनिष्ठ छात्रों को पढ़ाते भी थे। किसी समारोह का आयोजन होता या फिर प्रतिनिधि का चुनाव, सदैव उनकी ही बुलाहट होती।

नाना गतिविधियों के बीच उनका प्रखर मस्तिष्क गतिमान होता जा रहा था। तत्कालीन शिक्षक भी अपने इस प्रतिभावान छात्र से प्रसन्न थे। ऐसा छात्र जो शिक्षक की विद्या को साग्रह धारण करे व उनका नाम बढ़ाए, सदा ही अध्यापक को भाता है।

एम० ए० की परीक्षाओं से पूर्व ही ज़ाकिर जी के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन का आरंभ हुआ। महात्मा गाँधी जी के अलीगढ़ आगमन व असहयोग आंदोलन ने ज़ाकिर जी को विशेष रूप से प्रभावित किया।

गाँधी जी के ओजपूर्ण विचारों ने ज़ाकिर जी के सुप्त अंश को जगाया और नई राह दिखाई। नौकरी का प्रलोभन भी उन्हें अपने निश्चय से डिगा नहीं पाया। उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया व अलीगढ़ में ही जामिया मिलिया इस्लामिया की नींव डाली। हालाँकि एक उभरते व्यक्तित्व के लिए निर्णय इतना सरल नहीं था। एक ओर साफ-सुथरी नौकरी व सुखद भविष्य का लालच, वहीं दूसरी ओर अनिश्चितता व अनियमितताएँ किंतु ज़ाकिर जी ने अपनी आत्मा को हाजिर-नाजिर जानकर वह महत्त्वपूर्ण कदम उठा ही लिया।

बाद में वह प्रायः उन द्वंद्वात्मक पलों को याद करते थे—"अपनी ख्वाहिश से किया गया मेरी जिंदगी का यह पहला अहम् फैसला था। ऐसा फैसला मैंने जिंदगी में शायद ही कभी किया हो। मेरी बाकी जिंदगी मेरे इसी फैसले की बदौलत है।"

जामिया मिलिया में कुछ वर्ष कार्य करने के पश्चात ज़ाकिर जी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जर्मनी गए। पश्चिमी वातावरण ज़ाकिर जी पर रत्ती भर भी प्रभाव नहीं छोड़ सका। उनकी उत्तम वार्तालाप शैली व विचारों की मधुरता ने वहाँ भी रंग जमा दिया उन दिनों वहाँ हिंदुस्तान एसोसिएशन नामक

संस्था थी। वह सब अल्प समय में ही ज़ाकिर जी की विद्वत्ता के कायल हो गए और अध्यक्ष पद सौंपने का निश्चय कर लिया परन्तु अपने उसूलों के पाबंद ज़ाकिर जी ने अध्यक्ष पद लेने से इन्कार कर दिया।

उन्होंने जामिया के प्रकाशन ग्रह "मकतबा जामिया" व बर्लिन के कवियानी प्रेस के बीच संपर्क स्थापित करवाया। सुदूर जर्मनी में भी वह जामिया को भूल नहीं सके। हर पल वे यही सोचते थे कि संस्था के हित के लिए अगला कदम क्या हो ?

उन्होंने जर्मनवासियों को गाँधी जी के जीवन, कार्यों व विचारों से अवगत कराने के लिए कलम का सहारा लिया। उनके लेखों से बहुत से लोग गॉधीवादी विचारधारा के अनुयायी हो गए।

इन सब गतिविधियों के साथ-साथ उन्होंने एक लेखक के साथ संयुक्त रूप से गाँधी जी पर जर्मन भाषा में ग्रंथ लिखा। उसका नाम था—डाई बोटशेख्त डेस महात्मा गाँधी।

ज़ाकिर जी ने बर्लिन विश्वविद्यालय से अपने शोध प्रबंध "सुम्भा कम लाडे" पर पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की।

भारत लौटने पर जामिया की दिन-ब-दिन गिरती आर्थिक स्थिति ने उन्हे चिंतित कर दिया।

विश्वविद्यालय में उत्साही युवकों का अभाव होने के कारण उसकी प्रगति थम-सी गई थी। गाँधी जी, नेहरू जी, डॉ० अंसारी व हकीम अजमल खॉ जैसे नेताओं ने ज़ाकिर जी पर दवाब डाला कि वे जामिया मिलिया के कार्य में योगदान दें।

संस्था को दिल्ली लाया गया। ज़ाकिर जी एक सफल अध्यापक एव शिक्षाशास्त्री थे। वे सदा जामिया की आर्थिक अवस्था को ध्यान में रखते थे। आरंभ में वे तीन सौ रूपये मासिक वेतन पाते थे किंतु कुछ समय पश्चात वे दो सौ रूपये लेने लगे।

शिक्षण संस्था में वे छात्रों को पढ़ाते वक्त तन्मय हो जाते। दूसरे व्यक्ति को उसकी त्रुटि समझाने का तरीका बड़ा अनोखा था। एक बार एक माध्यमिक स्कूल के अध्यापक से प्राईमरी को पढ़ाने के लिए कहा गया तो उन्होंने तुनककर उत्तर दिया—

"मैंने ऊँची शिक्षा पाई है। मैं केवल बड़ी कक्षाओं को पढ़ा सकता हूँ।"

जाकिर जी चुपचाप उठ और स्वय उस कक्षा को पढाने लगे

के छात्र ज़ाकिर जी को अपना आदर्श मानते थे। ज़ाकिर जी का मानना था कि स्वच्छ एवं स्वस्थ वातावरण ही विद्यार्जन का उपयुक्त अवसर प्रदान करता है। इसके लिए वह प्रायः प्रयत्नशील रहते।

गंदे जूते पहन कर आने वाले छात्रों को सबक देने के लिए वे स्वयं ब्रुश व पॉलिश लेकर बाहरी द्वार पर बैठ गए।

गंदे जूते पहनने वाले छात्रों के जूते उन्होंने स्वयं साफ किए और कहना न होगा कि उस दिन के बाद उनका कोई भी छात्र बिना पॉलिश के जूते पहनकर नहीं आया।

बच्चे छोटे-छोटे कागज के टुकड़ों से गंदगी फैलाते थे। यह बात ज़ाकिर जी को नागवार थी। एक दिन उन्होंने छात्रों को वहुत से फटे कागज के टुकडे, जेब से निकालकर दिखाते हुए कहा—

"यह सब कूड़ा मुझे घर से यहाँ आते हुए रास्ते में मिला। मुझे बेहद दुख हुआ। यह स्थान ज्ञान का मंदिर है। इसे साफ रखना आपका पहला कर्तव्य है।"

सन् 1937 में गाँधी जी ने शिक्षा संबंधी सुधारों की तरफ ध्यान दिया। गाँधी जी चाहते थे कि बच्चों को केवल किताबी शिक्षा ही नहीं दी जानी चाहिए। शिक्षा का व्यावहारिक पहलू भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। जब तक शिक्षा के माध्यम से बच्चों का शारीरिक व मानसिक; दोनों प्रकार का विकास नहीं होगा, तब तक देश का कल्याण होना कठिन है।

गाँधी जी उस शिक्षा को बुनियादी शिक्षा का नाम देते थे। वे चाहते थे कि बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए एक कमेटी बनाई जाए। ज़ाकिर हुसैन जी कमेटी के अध्यक्ष बनाए गए।

उन्होंने बहुत ही अल्प समय में कड़ी मेहनत के साथ रिपोर्ट तैयार की। हालाँकि उस रिपोर्ट के कारण बहुत वाद-विवाद भी हुआ, किंतु गाँधी जी ने विशाल हृदय से उसका स्वागत किया। वे उनकी योग्यता से बेहद प्रभावित हुए व उन्हें हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का प्रधान नियुक्त किया।

ज़ाकिर हुसैन जी ने अपनी पुस्तक "भारत में शैक्षणिक पुनर्गठन" मे लिखा—

"मेरे शैक्षणिक चिंतन का प्रायः संपूर्ण ढाँचा महान जर्मन शिक्षक जार्ज कर्खेनस्टीनर से लिया गया है. जिसे वाद में गाँधी जी के चरणों में वैठ कर तथा अपनी कुछ शैक्षणिक अतर्दृष्टियों पर प्रयोग करके मैंने दृढ करने मे

सहायता पाई है।''

सन् 1946 के अंत में दंगे आरंभ हो गए। ज़ाकिर हुसैन जी मुस्लिम लीग व कांग्रेस के आपसी मतभेदों के कारण भी व्यथित थे.।

जामिया की रजत जयंती के अवसर पर उन्होंने व्यथित हृदय से कहा था—

''जानवरों की इस दुनिया में आप मनुष्यता की रक्षा कैसे करेंगे ? शब्द कठोर हैं किंतु तेजी के साथ बिगड़ते हालात में इससे कठोर शब्द भी मुलायम माने जाएँगे....

ज़ाकिर हुसैन जी के हृदय में मानवीय भावों का अभाव न था। परदुख कातरता व विनोदप्रियता उनके स्वभाव में थी। उनके घर में एक कामचोर नौकर था। लाख समझाने पर भी उसके तौर-तरीके नहीं बदले तो तय पाया गया कि उसे निकाल दिया जाए। ज़ाकिर हुसैन नहीं चाहते थे कि एक अवगुण के कारण किसी का रोजगार छीन लिया जाए। उन्होंने स्वयं उसे समझाया। अगली सुबह वह पानी का गिलास लिए उसके सिरहाने जा पहुँचे और बोले—

''उठिए जनाब, सुबह हो गई।''

नौकर हकबका कर उठा। इससे पहले कि वह हालात समझ पाता, ज़ाकिर जी उसके लिए चाय ले आए। नौकर तो मारे शर्म के पानी-पानी हो गया। उसी दिन से उसने पुरानी आदतें त्याग दीं और ज़ाकिर साहब का प्रिय नौकर बन गया।

पहले वह राज्यसभा के मनोनीत सदस्य थे। सन् 1957 में वे बिहार के राज्यपाल बने। वे 1962 तक इस पद पर रहे। अनेक स्थानों पर उन्होंने अपनी योग्यता, निर्णायक क्षमता व सुंदर हृदय का परिचय दिया।

वे सन् 1962 में उपराष्ट्रपति पद के लिए चुने गए। भारत सरकार ने 1963 में ज़ाकिर जी को भारत-रत्न अलंकार से सम्मानित किया।

ज़ाकिर हुसैन जी ने पूर्ण निष्ठा एवं श्रद्धा से सेवा का व्रत निभाया। वे पाँच वर्षों तक उपराष्ट्रपति के पद पर बने रहे।

13 मई, 1967 को जाकिर हुसैन जी ने भारतीय गणतंत्र का प्रथम मुसलमान राष्ट्रपति होने का गौरव पाया। हालाँकि इन चुनावों में राजनीतिक सरगर्मियाँ जोरों पर रहीं, किंतु जीत सत्य की ही हुई।

नीतिकुशल शिक्षाशास्त्री जाकिर जी ने राष्ट्रपति पद की गरिमा का निरंतर पालन किया

उस अवसर पर उन्होंने अपने भाषण में कहा—

"सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार। मैं सच्ची लगन से इस घर को सुंदर व मजबूत बनाने की कोशिश करूँगा, ताकि वह मेरे महान देशवासियों का उपयुक्त घर बन सके।"

उनके भीतर छिपे लेखक ने तमाम व्यस्तताओं के बाद भी हार नहीं मानी। कष्टों, रोगों व दिमागी परेशानियों को परे धकेल कर भी वे मौलिक लेखन करते रहे।

उनकी कहानियाँ बच्चों के लिए भी लिखी गईं जो कि समय-समय पर 'रूक्का ए रिहाना जामिया का' व "पयाम ए तालीम" में प्रकाशित होती रहीं।

उन्होंने मनोवैज्ञानिक व महान दार्शनिक 'अफलातून' की पुस्तक 'रियासत' का उर्दू अनुवाद भी किया। यदि ज़ाकिर जी के जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का केवल नाम ही लिया जाए तो अपने-आप में एक संपूर्ण पुस्तक बन सकती है।

सन् 1969 में जाकिर जी को दिल का दौरा पड़ा। सब मुँह बाए देखते ही रह गए और डॉक्टर ज़ाकिर हुसैन जी मौत की गोद में सो गए। नामी चिकित्सकों के सभी प्रयास असफल रहे।

शायद मैं गलत कह गई, ज़ाकिर जी नहीं मरे, वह तो केवल शरीर था। उनकी आत्मा आज भी उन दिलों में जीवित है जो उन्हें चाहते हैं व उनका सम्मान करते हैं।

डॉ० वी० वी० गिरि

(3-5-1969—20-7-1969)

तथा

(24-8-1969—24-8-1974)

"मैं तो एक साधारण व्यक्ति व जनता का सामान्य सेवक हूँ। मुझसे पहले के तीनों प्रतिभाशाली राष्ट्रपति सुविख्यात बुद्धिजीवी व बड़े विद्वान थे। मुझमें तो उन जैसा कोई गुण नहीं है कि मैं उनकी बराबरी कर सकूँ। मैं तो एक सरल-साधारण-सा व्यक्ति हूँ और मैंने श्रमिक आंदोलनों में सक्रिय भाग लेते हुए अपने जीवन का अधिकांश समय समाज के निम्न वर्ग के लोगों की सेवा में बिताया है। अतः अपनी अंतःप्रेरणा व प्रशिक्षण के कारण मैं जनता का प्रथम सेवक हूँ।"

यह शब्द कहे थे भारतीय गणतंत्र के चौथे राष्ट्रपति श्री० वराह गिरि वेंकट गिरि ने, वे एक सच्चे श्रमिक नेता के रूप में भारतीय जनमानस पर छा गए।

स्वतंत्र भारत में अनेक उच्च पदों पर कार्यरत होने के बाद भी वे अंत तक स्वयं को मजदूरों का साथी समझते थे। भारत जैसे देश में वी० वी० गिरि समान नेता ने सिद्ध कर दिखाया था कि श्रमिक वर्ग की उपेक्षा का अर्थ है "भावी प्रगति की उपेक्षा।"

गिरि जी का जन्म 10 अगस्त, 1894 ई० को बरहानपुर, उड़ीसा में हुआ। उनके पिता श्री "जोगैया पंतुल गारू" की गिनती नामी वकीलों में की जाती थी। लम्बे-चौड़े परिवार में सात पुत्र व पाँच पुत्रियाँ थीं, जिनमें गिरि जी लड़कों में दूसरे नंबर पर थे।

पिता चाहते थे कि पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा में कोई कमी न आने पाए अत

वे बराबर पुत्रों की शैक्षिक योग्यता पर नजर रखते थे। गिरि जी ने मद्रास से सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा उत्तीर्ण की।

श्री जोगैया की हार्दिक अभिलाषा थी कि गिरि उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाएँ। उन दिनों ब्रिटेन में शिक्षा प्राप्त भारतवासियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था तथा नौकरी प्राप्त करने में भी कठिनाई नहीं होती थी।

पुत्र ने पिता की आज्ञा का पालन किया तथा उन्हीं के समान वकील बनने पर राजी हो गए किंतु वे इंग्लैण्ड जाने के नाम पर अड़ गए।

जोगैया जी ने लाख समझाया किंतु जीत अंततः पुत्र की ही हुई। तय हुआ कि वे इंग्लैण्ड की बजाए आयरलैंड जाएँगे।

दरअसल गिरि जी नहीं चाहते थे कि वह इंग्लैण्ड जैसे देश में शिक्षा प्राप्त करें, जहाँ के निवासी दूसरे देशों को गुलाम बनाने में विश्वास रखते हों।

हृदय में अंग्रेजों के प्रति घृणा का ज्वालामुखी उबलता था। सन् 1913 में वे कानून की शिक्षा पाने के लिए आयरलैंड पहुँचे तो वहाँ की दशा देखकर दंग रह गए। आयरलैंडवासी भी इंग्लैण्ड के शिकंजे में कसे थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रयत्नों को बेरहमी से दबा दिया जाता।

उन दिनों भारतीय नागरिक भी दक्षिण अफ्रीका में समान अधिकारों के लिए संघर्षरत थे। उन पर अनगिनत अत्याचार किए गए। गिरि जी का हृदय भावों से भरा था। वे शोकाकुल हो उठे और डबलिन की इण्डिया सोसाइटी की ओर से विरोध किया।

उन्होंने इस विषय में एक छोटी पुस्तक भी लिखी जिसका शीर्षक था "दक्षिण अफ्रीका का आतंक।" भारतीयों तक सही हालात पहुँचाने के लिए वह पुस्तक भारत भी भेजी गई किंतु ब्रिटिश सरकार ने उसे वितरण से पूर्व ही जब्त कर लिया।

ब्रिटिश सरकार जानना चाहती थी कि उक्त पुस्तक का लेखक कौन है?

छानबीन के पश्चात यह तो पता लग गया कि वह पुस्तक आयरलैण्ड में छापी गई थी किंतु प्रकाशक का पता न मिलने के कारण आगे की कार्रवाई ठप्प हो गई और गिरि जी बाल-बाल बचे।

गिरि जी पर महात्मा गाँधी जी का गहरा प्रभाव पड़ा। दोनों के विचारों में कुछ भिन्नता अवश्य थी किंतु मंजिल एक ही थी। वे उनसे लंदन में मिले। परस्पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ और गाँधी जी के वचनों ने गिरि जी को अहिंसा का सरल किंतु दृढ़ मार्ग दिखलाया बस उसी दिन से गिरि जी

भी अहिंसावादी हो गए।

गिरि जी मजदूरों की समस्याओं से द्रवित हो उठते। उन्होंने निश्चय किया कि वे ट्रेड यूनियन बनवाएँगे। वह एक ऐसी संस्था होगी, जिसके नेता अपने मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ेंगे।

तभी गिरि जी एक आरोप के चक्रव्यूह में फँसा दिए गए। सरकार ने कहा कि उनका संबंध आयरलैण्ड के क्रांतिकारियों से है।

गिरि जी ने संदेहास्पद दस्तावेज जला दिए, जब घर पर छापा पड़ा तो पुलिस के हाथ कुछ न लगा किंतु शक का घेरा तो बन ही गया था।

परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि गिरि जी को भारत लौटना पड़ा। ब्रिटिश संसद मे गिरि जी के मुकदमे की सुनवाई के पश्चात निर्णय सुनाया गया—

"ब्रिटिश सरकार के पास विश्वास करने के लिए कई कारण हैं कि श्री गिरि का संबंध आयरलैण्ड के राष्ट्रवादियों के साथ बहुत गूढ़ है, परंतु उनके घर पर पुलिस को कोई प्रमाण नहीं मिला है, अतः सरकार उन्हें केवल आयरलैण्ड से ही निष्कासित करती है।"

गिरि जी भारत लौटे व मद्रास उच्च न्यायालय में वकालत प्रारंभ की। सरकार की ओर से सरकारी नौकरी का प्रलोभनरूपी चुग्गा भी फेंका गया किंतु गिरि जी जानते थे कि वह नौकरी स्वीकारने का अर्थ होगा, "सरकार की गुलामी" अतः उन्होंने स्पष्ट शब्दों में सरकारी पद के लिए इनकार कर दिया।

वकालत करते समय उनका संपर्क अनेक बड़े नेताओं व वकीलों से हुआ। जिनमें श्री वरदाचारी, लार्ड सिन्हा व श्री टी० प्रकाशम आदि प्रमुख थे। वकालत जोरों पर थी किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति की लौ भी बुझी न थी। महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन में उन्होंने भाग लिया। वहीं सरकार को इस स्वाभिमानी देशप्रेमी का पूर्ण परिचय प्राप्त हुआ। उनके हठ पर जेल ले जाने वाली गाडी को प्लेटफार्म तक लाया गया।

गिरि के पिता जी ने भी असहयोग आंदोलन में भाग लिया। उनकी माता जी ने बहुत कुशलता से घर का प्रबंध संभाला। कुछ समय पश्चात गिरि जी ने वकालत का पेशा त्याग दिया और स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े।

जेल-जीवन में राजनैतिक कैदियों के साथ भी चोरों व डकैतों सा व्यवहार होता था किंतु गिरि जी ने उसका विरोध किया। उन्होंने भूख-हडताल आरंभ

कर दी। इनकी दृढ़ता के आगे जेल-अधिकारियों को झुकना पड़ा। उसके बाद से वे राजनैतिक कैदियों के भोजन आदि दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान देने लगे।

गिरि जी ने मद्य-निषेध आंदोलनों में भी भाग लिया। वे निःसंकोच रूप से परिवार सहित, ताड़ी की दुकानों पर धरना देते। उन्हें कैद हो जाने का भय नहीं था।

गिरि जी में आंरभ से ही संगठन का गुण विद्यमान था। बरहामपुर मे उनके द्वारा संगठित युवकों का दल गरीब बच्चों के लिए सप्ताह में एक बार भोजन की व्यवस्था करता था।

वे जेल से रिहा हुए तो खडगपुर रेलवे वर्कशाप के कर्मचारी इनके पास आए और ट्रेड यूनियन बनाने का प्रस्ताव रखा। गिरि जी भी तो यही चाहते थे कि दलित मजदूर अपनी माँगों के समर्थन में सिर ऊँचा कर सकें। उन्होंने सहर्ष सहमति दे दी। सर्वप्रथम बंगाल व नागपुर रेलवे की मजदूर यूनियनों का संगठन हुआ। वही संगठन अपने विकसित रूप में अखिल भारतीय कर्मचारी संघ कहलाया।

सन् 1927 में सरकार ने रेलवे मजदूरों की छंटनी की। गिरि जी इस अन्याय को कैसे सहन करते ? पहले तो प्यार से समझाना चाहा किंतु कोई नतीजा न निकलने पर हड़ताल की घोषणा कर दी गई।

हड़ताल सफल रही। सरकार को निकाले गए कर्मचारियों को वापिस लेना पड़ा। इस घटना ने गिरि जी को और भी लोकप्रिय बना दिया। इस प्रसिद्धि का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा। वे दिन में 18-18 घंटे काम करते थे किंतु चेहरे पर शिकन तक नहीं आती थी।

मृदुभाषी गिरि जी को स्वतंत्र भारत में लंका के भारतीय उच्चायुक्त का पद सौंपा गया। सन् 1947 में वे उत्तरप्रदेश के राज्यपाल बनाए गए। सन् 1967 में मैसूर के राज्यपाल के रूप में आपने दायित्वों का उचित रूप से निर्वाह किया।

राज्यपाल के रूप में कार्य करने के साथ-साथ वे श्रमिक नेता के रूप में भी कार्यरत रहे।

गिरि जी की प्रशासनिक क्षमता ने उन्हें केंन्द्रीय मंत्रिमंडल में श्रममंत्री का पद भी दिलवा दिया किंतु कुछ मतभेदों के कारण उन्होंने स्वयं ही त्यागपत्र दे दिया

सन् 1967 के आम चुनावों के पश्चात श्री वी० वी० गिरि जी उपराष्ट्रपति बने। उनकी योग्यता, कर्मठता, परिश्रम, अद्भुत कार्य क्षमता व निर्णय शक्ति का सभी लोहा मान गए।

तत्कालीन राष्ट्रपति जाकिर हुसैन जी की मृत्यु के पश्चात परंपरागत रूप से राष्ट्रपति पद, श्री गिरि जी को ही मिलना था किंतु कांग्रेस के आंतरिक मतभेदों के कारण श्री नीलम संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी चुना गया।

स्वाभिमानी गिरि जी ने निर्दलीय सदस्य के रूप में चुनाव लड़ने का निश्चय किया और विजयी रहे। उन्होंने राष्ट्रपति पद पर आसीन होने के पश्चात भारतीय जनता को संबोधित करते हुए कहा।

"चुनाव का परिणाम जनसाधारण की विजय है। मैं सदा जनसेवक रहा हूँ और अब भी रहूँगा"।

श्री गिरि जी ने अपने वचनों को सिद्ध कर दिखाया और राष्ट्रपति पद की मर्यादा पर कभी आँच नहीं आने दी। सन् 1971 में श्री गिरि जी को श्रमिक नेता के रूप में "भारत-रत्न" की उपाधि से अलंकृत किया गया।

24 अगस्त, 1974 को कार्यकाल पूरा करने के पश्चात श्री गिरि जी बंगलौर चले गए। राष्ट्रपति पद से हटने के बाद भी वे देश सेवा से विमुख नहीं हुए।

1980 में उनका निधन हो गया। संसार में गिरि जी सरीखे व्यक्ति आजीवन स्मरण किए जाते रहेंगे।

न्यायमूर्ति मोहम्मद हिदायत उल्ला

(20-7-1969—23-8-1969)

तथा

(6-10-1982—31-10-1982)

श्री मोहम्मद हिदायत उल्ला का जन्म 17 दिसम्बर 1905 को नागपुर (महाराष्ट्र) में हुआ। इनके पिता श्री हाफिज विलायत उल्ला साहेब ने 9 वर्ष की आयु में कुरान कण्ठस्त कर लिया था। वह अपने भाईयों में सब से छोटे थे। इनके दोनों बड़े भाईयों के नाम श्री इकराम उल्ला और श्री अहमद उल्ला था और वह भी विद्वान थे। इनकी पत्नी का नाम श्रीमति पुष्पा शाह था। श्री हिदायत उल्ला जी ने 1922 में हाई स्कूल पास किया, 1926 में बी. ए. किया। फिर वह ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगिलिस्तान चले गए जहाँ से उन्होंने बैरिस्ट्री का इम्तिहान पास किया। वे बाल्यकाल से ही मेधावी थे। कक्षा में वाह-वाही लूटने वाले छात्रों में सबसे आगे रहते।

1930 में ऊँची शिक्षा ग्रहण करने के बाद वह स्वदेश लौटे और नागपुर में ही कानून की प्रैक्टिस शुरू की। 1946 से 1956 तक वह नागपुर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश रहे। 1958 में वह भारत के मुख्य न्यायाधीश बने। वे एक विद्वान न्यायज्ञ थे।

उन्होंने अनेक प्रकार के राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किए।

वह एक सफल लेखक भी थे, जिन्हें पाठकों ने मुक्त मन से सराहा। इनका लेखन प्रायः अंग्रेजी भाषा में हुआ जो कानून और संविधान से सम्बंधित है एक पुस्तक "तकदीर-ओ-ताबीर" उर्दू भाषा में है यह इनके

चौदह लेखों का संग्रह है, जो मार्च 1983 में प्रकाशित हुआ था।

कुछ अंग्रेजी पुस्तकों के नाम यह हैं :—"Democracy in India and the Judicial Process", The South-West Africa Case, Judicial Methods, A Judge's Miscellany, U.S.A. and India, My Own Boswell (Autobiography). इनकी आत्म कथा बहुत चर्चित रही।

श्री हिदायत उल्ला साहेब अनेक भाषाएँ जानते थे जिनमें अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी, फ्रांसीसी मुख्य हैं।

हिदायत उल्ला जी 31 अगस्त 1979 से 30 अगस्त 1984 तक भारत के गौरवमयी उपराष्ट्रपति पद पर आसीन रहे। उन्होंने पद से जुड़े सभी दायित्वों को बखूबी निभाया।

वे दो बार भारत के कार्यवाहक राष्ट्रपति रहे। जब वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे तो उसी समय 3 मई 1969 को राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन का निधन हो गया और उप-राष्ट्रपति डॉ. वी. वी. गिरी ने संविधान के अनुसार उसी दिन कार्यवाहक राष्ट्रपति का पद संभाला। श्री गिरी ने अगस्त में राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने के लिए अपने पद से 20 जुलाई को त्यागपत्र दिया जो संविधानुसार था। उस समय श्री हिदायत उल्ला साहेब को कार्यवाहक राष्ट्रपति मनोनीत किया गया। वह भारत के इस सबसे बड़े पद पर 20 जुलाई 1969 से 23 अगस्त 1969 तक रहे। वह 6 अक्टूबर 1982 से 31 अक्टूबर 1982 तक भी कार्यवाहक राष्ट्रपति रहे। अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने अपने व्यक्तित्व और सूझ-बूझ की अनूठी छाप छोड़ी।

24 अक्टूबर 1992 को इनका स्वर्गवास हो गया।

श्री फख़रुद्दीन अली अहमद

(24-8-1974—11-2-1977)

"हिंदी समर्थकों को ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे गैर-हिंदी भाषी ऐसा समझें कि हिंदी उन पर थोपी जा रही है। गैर हिंदी भाषियों को भी समझना चाहिए कि देश में एक ऐसी भाषा होनी जरूरी है, जिसे सभी समझ सकें तथा जिसके द्वारा काम भी कुशलतापूर्वक हो सके। ऐसी भाषा हिंदी ही है।"

यह विचार प्रकट किए थे, श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद ने। वे हमारे भारतीय गणतंत्र के पाँचवें राष्ट्रपति पद पर सुशोभित हुए।

माननीय अहमद जी विशुद्ध राष्ट्रवादी थे। मुस्लिम सभ्यता व संस्कृति में पलने के बावजूद, उनके हृदय में सभी धर्मो के लिए आदर की भावना थी। वे कहते थे कि—

"मैं धर्म पर आधारित राजनीतिक पार्टियों के विरुद्ध हूँ। यह एकता व राष्ट्रवाद के खिलाफ ही नहीं, विघटन व सांप्रदायिकता के नाम पर भी आधारित है। हमें अगर मजबूत व आधुनिक राष्ट्र के रूप में जीवित रहना है, तो हमें अपने में संकीर्णता को बिलकुल प्रश्रय नहीं देना चाहिए।"

उनका जन्म 13 मई, सन् 1904 को पुरानी दिल्ली की गली कासिम जान में हुआ। पिता जैनुद्दीन अहमद फूले न समाए। कहते हैं कि पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं। नन्हे बालक ने साधारण बच्चों की तुलना में देर से बोलना व चलना आरंभ किया किंतु उनका बौद्धिक स्तर समवयस्कों से कहीं अधिक था

उनके पिता एक योग्य व बुद्धिमान चिकित्सक थे। वे पहले भारतीय थे जो कि चिकित्सा सेवा में सहायक जनरल के पद तक पहुँचे। अगाध ऐश्वर्य व वैभव का साम्राज्य था। घर में श्री एवं लक्ष्मी का वास था।

सरकारी नौकरी में होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति उन्हें ''कर्नल'' कहकर पुकारता था। अदब-कायदे, कड़े अनुशासन, समय की पाबंदी, अंग्रेजी वेश-भूषा व घर की सजावट को देखकर हर व्यक्ति दंग रह जाता।

कर्नल महोदय चाहते थे कि बच्चे भी पूरी तरह से अंग्रेजी सभ्यता में रग जाएँ व बड़े होकर ऊँचा ओहदा पाएँ। उन्होंने बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा व लाड़ लड़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी किंतु स्नेह की छत्र-छाया व सुख-सुविधाओं के साथ-साथ अनुशासन की लगाम भी थी।

बालक अहमद की माता जी ''बेगम रुकिया सुलताना'' एक शिष्ट व मिलनसार महिला थीं। पति के स्वभाव के विरुद्ध, वे भारतीय सभ्यता की पक्षधर थीं। घर में अंग्रेजों की दावतें चलतीं, पति व बच्चे अंग्रेजी वेश-भूषा धारण करते, पाश्चात्य पद्धति से भोजन खाया जाता, कुल मिला- कर पश्चिमी हवा की लहर फैली हुई थी किंतु कर्नल ने कभी भी अपने विचारों को पत्नी पर लादने का प्रयत्न नहीं किया।

कहा जाता है कि वे प्रसिद्ध उर्दू शायर मिर्ज़ा ग़ालिब के नजदीकी रिश्तेदारों मे से एक थीं। लिहाजा उनको शेरो-शायरी का भी शौक था। इस तरह दो विभिन्न प्रभावशाली व्यक्तित्वों के बीच बालक अहमद की परवरिश हुई।

उचित समय उनकी पढ़ाई का प्रबंध हुआ। घर पर ही एक अध्यापक आते थे। उर्दू, अरबी व अंग्रेजी की दुरूह लिपियाँ रटना सहज न था। कई बार कठोर दण्ड भी सहना पड़ता। आगे चलकर जब अहमद जी राष्ट्रपति पद पर पहुँचे तो वे प्रायः कहते थे कि छोटे बच्चों को दण्ड देना अमानवीय एवं अन्यायपूर्ण है।

विधिवत शिक्षा का आरंभ हुआ, गोंडा नगर से। तत्पश्चात् वे दिल्ली में पढने लगे। सोलह वर्षीय अहमद जी को सेंट स्टीफेंसन में प्रवेश दिलाया गया कितु उनके पिता मन-ही-मन उनके भविष्य की रूपरेखा बना चुके थे। वे चाहते थे कि पुत्र को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड भेजा जाए।

माता जी नहीं चाहती थीं कि पुत्र को इतनी दूर भेजा जाए। उन्हें समझाते हुए कर्नल महोदय ने कहा—

"मैं चाहता हूँ, मेरा बेटा उच्च शिक्षा पाकर मेरी ही तरह एक बहुत बडा अफसर बने। क्या तुम ऐसा नहीं चाहतीं ?"

कुछ पति के समझाने का तरीका व कुछ उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व, बेगम इन्कार न कर सकीं और फ़ख़रुद्दीन अली अहमद जी को विदेश भेज दिया गया।

उन्होंने इंग्लैण्ड के सेंट कैथरीन कॉलेज में इतिहास की शिक्षा प्राप्त की। नेहरू जी भी उन दिनों इंग्लैण्ड में ही थे। समान विचारधाराएँ, सरल भाव व सादगी ने एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित किया व वे दोनों मित्र बन गए। वह मित्रता नेहरू जी की मृत्युपर्यंत कायम रही।

अहमद जी ने मन लगाकर शिक्षा ग्रहण की; साथ ही वे आस-पास के बदलते वातावरण के प्रति भी सजग रहते थे। राजनैतिक हलचलों की उथल-पुथल आरंभ हो चुकी थी। इसका स्पष्ट प्रभाव अहमद जी ने अनुभव किया।

सन् 1928 में वे स्वदेश लौटे। पिता जैनुद्दीन जी का वर्षों से संचित स्वप्न साकार होने को था। पुत्र कानून की डिग्री ले कर लौट रहा था किंतु वे उसे एक अंग्रेज अफसर की भाँति रौब-दाब वाले व्यक्ति के रूप में देखना चाहते थे।

अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् केवल पुत्र ही उनकी अभिसंचित अभिलाषाओं का केन्द्र बिन्दु था। इस इच्छा-पूर्ति के लिए उन्होंने बाल्यकाल से पुत्र को अंग्रेजी वातावरण दिया। उन्हें पूरा विश्वास था कि इंग्लैण्ड में सात वर्ष का समय बिताकर लौटने वाले योग्य पुत्र के लिए अच्छी नौकरी का अभाव नहीं होगा।

वे आए दिन अंग्रेज अफसरों को दावतें देने लगे। पुत्र को उनसे मिलवाते व बहुत गर्व से उसकी उपलब्धियों का वर्णन करते।

पिता की आज्ञा-पालन में फ़ख़रुद्दीन पीछे न हटते। वे सहर्ष अंग्रेज अफसरों से मुलाकात करते किंतु भीतर ही भीतर घृणा का ज्वालामुखी भी पल रहा था।

बचपन से ही अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार देखने-सुनने के कारण उनके अवचेतन मस्तिष्क में विद्रोह की भावना भड़क रही थी जिससे वे अब तक थे हाँ सदा हृदय में द्वन्द्व-सा छिडा रहता जिस तरह किसी

महत्त्वपूर्ण निर्णय से पूर्व एक अभेद चुप्पी छा जाती है। उसी प्रकार वे भी प्रत्यक्ष रूप से शांत व चुप थे।

और एक दिन वे अपने अंतिम निर्णय तक जा पहुँचे और अपनी माता जी से कहा–

"अम्मी मैं अंग्रेजों की नौकरी नहीं करूँगा।"

यह सुनकर बेगम रुकिया सकते में आ गईं। पुत्र के प्रति पति की इच्छाओं से वे अपरिचित न थीं।

यह उनके लिए परीक्षा की घड़ी थी। उन्हें पति व पुत्र दोनों के मनोभावों की कदर करते हुए परस्पर विवाद को सुलझाना था।

आखिर कब तक इस बात को छिपाया जा सकता था। कर्नल तक तो बात पहुँचनी ही थी और पहुँच भी गई।

परिणाम वही था जिसकी संभावना से बेगम का कलेजा काँप रहा था। एक क्षण को तो कर्नल स्तब्ध हो उठे। क्या कहता है पुत्र ? जिस बात की कल्पना भी वे नहीं कर सकते, वही सब अब घटित होगा।

उनका पुत्र उच्च पदाधिकारियों के समक्ष नहीं बैठेगा ? अंत में क्या वकालत ही उसका पेशा होगा ?

ऐसे प्रश्न उनके मस्तिष्क में कौंध गए। पहले-पहल तो उनकी प्रतिक्रिया प्रतिकूल रही किंतु पुत्र की दृढ़ता के आगे उनका वश न चला। ऐसे में बेगम साहिबा ने पति को समझाया–

"हमने फ़ख़रू को पढ़ा-लिखाकर अपना फर्ज अदा किया। अब वह समझदार हो चला है, अपना भला-बुरा समझ सकता है। हमारा काम है केवल राय देना। उस पर अमल हो न हो, यह उसकी मर्जी पर चलने दें।"

कर्नल महोदय ने किसी तरह अपने मन को समझा ही लिया। पुत्र की प्रसन्नता ही तो पिता की इच्छा होती है। अतः वे उसके लिए भविष्य के नए स्वप्न बुनने लगे।

अहमद साहब वकालत का पेशा अपनाना चाहते थे। अब्बा हजूर की स्वीकृति मिलते ही काम और भी आसान हो गया। वे पंजाब हाईकोर्ट, लाहौर में अपने पिता के मित्र के सहायक रूप में कार्य करने लगे।

इधर कर्नल महोदय, असम की पैतृक संपत्ति से संबंधित विवादों से परेशान थे उन्होंने तय किया कि अहमद ही उन मुकदमों का निपटारा करें। फलतः

अहमद साहब असम चले आए।

असम में उनके नए जीवन का शुभारंभ हुआ। उनकी योग्यताओं व प्रतिभा को निखरने के बहुत अवसर मिले।

गुवाहाटी में उनकी गिनती प्रतिष्ठित वकीलों में होती थी। कहते हैं कि विचारवान् पुरुष सदैव सुगंधित पुष्प की भाँति अपनी उपस्थिति का आभास स्वयं देते हैं। ऐसा ही कुछ अहमद साहब के साथ भी हुआ।

उनकी विनम्रता, मिलनसार स्वभाव, जिंदादिली, अद्‌भुत निर्णय क्षमता व वाकपटुता से सभी प्रभावित थे। शायद ही कोई ऐसा मुकदमा रहा हो जिसमे उन्हें हार का मुँह देखना पड़ा हो।

धन व यश बिन माँगे मिल गए किंतु एक कसक अभी बाकी थी। भीतर ही भीतर हृदय में क्रोध का दावानल धधकता था।

अंग्रेजों के प्रति दबाई गई घृणा कभी-कभार अपना रंग दिखा ही देती थी। ऐसे में जवाहर लाल नेहरू व मौलाना अबुल कलाम आजाद सरीखे पुरुषो की संगत ने चिंगारी को भड़का ही दिया।

अंग्रेजों के विरुद्ध कई स्थानों पर संस्थाएँ व सभाएँ बन रही थीं जिन्हे नौजवानों की जरूरत थी। अहमद जी भी सन् 1931 में कांग्रेस दल के सदस्य बन गए।

वकालत के साथ-साथ राजनीति के माध्यम से देश सेवा का संकल्प जोर पकड़ रहा था। सन् 1935 में उन्होंने असम विधान सभा के लिए पहला चुनाव लड़ा। विरोधी पक्ष बुरी तरह पराजित हुआ।

वे बारदोलाई मंत्रिमंडल में वित्त व राजस्व मंत्री बनाए गए। इस पद पर रहते हुए उनकी अनोखी सूझ-बूझ व कार्य क्षमता देखकर लोगों ने दाँतों तले उँगली दबा ली।

प्रायः माना जाता था कि कृषि आय पर कर लगाने से निर्धन वर्ग पर अतिरिक्त भार बढ़ेगा किंतु अहमद जी ने स्पष्ट किया कि कृषि आय पर कर लगने से पूँजीपति वर्ग को ही कर चुकाना होगा जो कि इस अनावश्यक सुविधा की आड़ में बच जाता है।

चाय बागान के मालिक इस निर्णय से क्षुब्ध हो उठे। बात ऊपर तक जा पहुँची। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अहमद जी के पक्ष में निर्णय दिया।

अहमद जी अपने प्रस्ताव पर डटे रहे और अंत में विजय उन्हीं को मिली। इस मौलिक प्रस्ताव के अनुमोदन से अहमद साहब ने बहुत यश पाया। शायद वे और भी लाभप्रद साहसिक कदम उठाते किंतु कांग्रेस की प्रांतीय सरकारो द्वारा त्यागपत्र दे दिया गया।

सभी एक बार पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन में जुट गए। सत्याग्रह की घोषणा हुई। अहमद साहब भी जेल की सलाखों की पीछे जा पहुँचे।

जेल से बाहर आए तो "भारत छोड़ो आंदोलन" जोरों पर था। सरकार अपनी पूरी शक्ति से क्रांतिकारियों के दमन का प्रयास कर रही थी। अहमद जी उन दिनों असम में एक प्रख्यात नेता के रूप में उभर चुके थे। जनता उनके भाषणों को पूरे ध्यान से सुनती व मनन करती।

तब सरकार ऐसे खतरनाक नेता को खुला कैसे छोड़ देती? आपको भी साढे तीन वर्ष तक सुरक्षा कैदी के रूप में कैद कर लिया गया।

कैसा विरोधाभास था। कहाँ तो कर्नल महोदय पुत्र के लिए उच्च अधिकारी पद का स्वप्न संजोए थे और कहाँ अंग्रेज सरकार की कड़ी कैद।

कैदी जीवन में अहमद जी ने पठन-पाठन की तरफ विशेष ध्यान दिया। इन पुस्तकों के अध्ययन ने मस्तिष्क की सुप्त चेतनाओं के जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जेल जीवन में ही अहमद जी के विवाह की बातचीत चल रही थी। उनकी बहन हमीदा सुलताना, अलीगढ़ के एक परिवार में बात चलाने गईं। एक नातेदार जिज्ञासावश पूछ बैठे—

"लड़का करता क्या है ?"

"जी, फिलहाल तो 'जेल में है'" बहन ने बेबाकी से उत्तर दिया।

उनका उत्तर सुनते ही कमरे में सन्नाटा छा गया। "भला ऐसे लड़के से लड़की कैसे ब्याह दें जो पहले से ही जेल में है ?"

तब हमीदा बहन ने जेल में रहने का कारण स्पष्ट किया। लड़की वालों ने चैन की साँस ली। देश के लिए लड़ने वाले युवक को बिटिया देने में उन्हें कोई आपत्ति न थी ?

1 नवंबर सन् 1945 में अहमद जी व आबिदा बेगम परिणय सूत्र में बंध गए। बेगम उनसे आयु में बेहद छोटी थी किंतु यह अंतराल कभी भी बाधक नहीं बना। आबिदा बेगम ने सदा एक सफल गृहिणी, समझदार माँ

व सुलझी हुई पत्नी का रोल अदा किया। दो पुत्रों व एक पुत्री का जन्म हुआ।

आबिदा बेगम अपने राजनीतिज्ञ पति की तमाम व्यस्तताओं को समझती थीं। अतः उन्होंने कभी भी शिकायतों का पुलिंदा नहीं बाँधा।

सन् 1945 के विधान सभा चुनावों में पराजित होने पर भी अहमद साहब की लगन व कार्यनिष्ठा में कोई अंतर नहीं आया।

सन् 1946 में वे असम के एडवोकेट-जनरल बनाए गए।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। लाखों देशवासियों ने अपने बलिदानो के बल पर आजादी पा ही ली किंतु इस खुशी के साथ-साथ विभाजन का दर्द भी शामिल था।

तत्पश्चात वे राज्य सभा के सदस्य चुने गए। उसी वर्ष उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक में भाग लिया। वहाँ वे भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य रूप में भेजे गए।

असम मंत्रिमण्डल में अहमद जी ने उत्कृष्ट योग्यता का परिचय दिया। सन् 1964 में वे संसदीय मंत्रिमंडल के सदस्य भी बने।

केन्द्र में सर्वप्रथम उन्हें सिंचाई व बिजली मंत्रालय सौंपा गया परंतु कुछ समय पश्चात वे शिक्षामंत्री मनोनीत किए गए।

लोकसभा के चुनाव में पुनः जीतने पर उन्हें श्रीमति गाँधी ने अपने मंत्रिमंडल में औद्योगिक विकास व कंपनी के मामलों का मंत्री नियुक्त किया।

इस प्रकार विभिन्न कार्यो को अंजाम देते हुए अहमद जी को सन् 1970 में कृषि मंत्रालय का भार सौंपा गया।

कृषि मंत्री होने के पश्चात अहमद जी ने बड़ी बुद्धिमत्ता व दूरदर्शिता से भावी कठिनाईयों से निबटने की योजना बनाई।

उन्होंने खाद्य संकट को मिटाने के लिए गेहूँ का राष्ट्रीयकरण किया।

राज्यों के कृषि मंत्रियों के सामूहिक सम्मेलनों में कृषकों से जुड़ी समस्याओ पर विचार-विमर्श होता व संभावित हल तलाशे जाते।

सिंचाई की सुचारू व्यवस्था, कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए नई तकनीको का प्रयोग, सुधरे किस्म के बीजों का उपयोग, उर्वरकों का उचित्त प्रयोग आदि तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कृषि नीतियाँ बनाई गई व उन पर अमल भी हुआ।

अहमद जी ने मुस्लिम देशों में जा कर भारत के विचारों से कराया

क्योंकि पाकिस्तान के नेता कुछ मुद्दों पर भारत को बदनाम कर रहे थे।

अहमद साहब की कर्तव्यनिष्ठा, देश प्रेम व कर्मठता को देखते हुए, कांग्रेस ने सन् 1974 में इन्हें राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार घोषित किया।

इनके विषय में विरोधी सदस्यों ने कुछ कुशंकाएँ भी प्रकट कीं। अहमद जी ने निःसंकोच उन शंकाओं का निराकरण किया क्योंकि साँच को आँच नहीं होती। सच्चा व्यक्ति सदैव अपनी पूर्ण निष्ठा व निर्भीकता के साथ डटा रहता है।

अनेक व्यक्तियों ने अहमद जी पर दोषारोपण किया कि वे नेहरू परिवार के निकटतम लोगों में हैं। अतः वे प्रधानमंत्री के हाथों रबड़ की मोहर बन जाएँगे।

अहमद साहब इस आक्षेप को सह न सके और कड़े स्वर में प्रश्नकर्त्ताओं को उत्तर दिया—

"बेशक नेहरू परिवार व प्रधानमंत्री से मेरे परिवार का घनिष्ठ संबंध है। लेकिन राष्ट्रपति को महज रबड़ की मोहर कहना भारतीय संविधान व पूर्व के सभी राष्ट्रपतियों का अपमान है। मैं केवल दल से अधिक देश सेवा का प्रयत्न करूँगा।"

विपक्ष की ओर से खड़े त्रिदिव चौधरी पराजित हुए। 24 अगस्त, 1974 को फखरुद्दीन अली अहमद जी भारतीय गणतंत्र के पाँचवें राष्ट्रपति बने। तोपों की सलामी के बीच, प्रधान न्यायाधीश श्री राय ने उन्हें राष्ट्रपति पद की शपथ दिलवाई।

अहमद जी ने कहा—

"मैं अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों के पदचिन्हों पर चलने की कोशिश करूँगा। मेरी कोशिश रहेगी कि मैं डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जैसा कट्टर राष्ट्रवादी, डॉ० राधाकृष्णन जैसे विद्वान, डॉ० जाकिर हुसैन सरीखे महान शिक्षा शास्त्री व गरीब जनता के सबसे बड़े दोस्त वी० वी० गिरि के उदाहरणों पर चलूँ।"

अहमद जी बहुत तन्मयता से आलोचकों की बात सुनते। वे दृढ़ निश्चयी थे। एक बार कदम उठा लेने पर पीछे मुड़ना उनके स्वभाव में न था।

गंभीर प्रकृति होने पर भी हास्यप्रियता व मधुरता की कमी न थी। अवसर के अनुसार वातावरण में सहजता लाने का गुण वे भली-भाँति जानते थे।

राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण के पश्चात उन्होंने जो भाषण दिया वह

बहुत ही सुंदर भावों से भरा था। उन्होंने अपने भाषण में भारत की आम जनता से जुड़ाव की अपील करते हुए कहा—

"डॉ० ज़ाकिर हुसैन की तरह हम सब का भी यही यकीन होना चाहिए कि भारत एक ऐसा देश है, जहाँ कल्चरल एकता के लिए बड़े-बड़े तजुर्बे किए जाएँगे व उनमें पूरी कामयाबी भी मिलेगी। यह हमारे देशवासियों का फर्ज है कि इस काम में बड़ी हिम्मत और लगन से शामिल हों और भारत की तहजीब के ताने-बाने को और ज्यादा खूबसूरत, मजबूत व पायदार बनाने में हाथ बटाएँ। इसके लिए सिर्फ सियासी एकता से ही काम नहीं चलेगा, बल्कि लोगों के दिल और दिमाग को पूरी तरह एक-दूसरे के करीब लाना होगा, चाहे वे गाँवों में हों या शहर में, अमीर हों या गरीब, किसान हों या मजदूर।"

अहमद जी ने देश पर छाए संकटों का डटकर मुकाबला किया। वे एक सच्चे देशभक्त थे। सन् 1977 में 11 फरवरी की सुबह उन्हें दिल का दौरा पड़ा। लाख प्रयत्न किए गए परंतु उन्हें मौत के निर्मम हाथों से बचाया न जा सका। भारत माँ का एक परिश्रमी व ईमानदार सपूत चल बसा।

आज भी हम अहमद जी सरीखे व्यक्ति की कमी को दिल से महसूस करते हैं।

श्री बासप्पा दानप्पा जत्ती

(11-2-1977—25-7-1977)

स्वतंत्र भारत के उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती का पूरा नाम था 'बासप्पा दानप्पा जत्ती।' वे कर्नाटक के छोटे से गाँव सावलगी के साधारण किसान परिवार में पैदा हुए। उनकी जन्मतिथि थी "10 सितंबर, 1912।"

उन्होंने अपनी असाधारण योग्यता व परिश्रम के बल पर वकील, संसदीय सचिव, मंत्री, मुख्यमंत्री, उपराज्यपाल व अंत में उपराष्ट्रपति पद को सुशोभित किया। वे कुछ माह के लिए कार्यवाहक राष्ट्रपति भी चुने गए।

उनके पिता का नाम 'दानप्पा' था। वे एक ईमानदार, धर्मप्रिय व मृदुभाषी व्यक्ति थे। परिवार पर छाए आर्थिक संकट के बाद भी उनके चेहरे पर सदा मृदु मुसकान छायी रहती और कुछ ही समय में उन्होंने अपनी लगन के बल पर पारिवारिक भरण-पोषण का प्रबंध कर लिया। पुत्र ने भारतीय संस्कृति व संस्कारों की अनमोल विरासत माता-पिता से ही पाई।

माँ भाग्यण्वा भी धर्मपरायण महिला थीं। उन्होंने सदैव बच्चों को यही सिखाया कि अतिथि भगवान का दूसरा रूप होता है, अतः उसका सत्कार करना चाहिए।

जत्ती जी की प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई। पिता ने उन्हें दुकान में बहीखाता लिखना भी सिखाया मैट्रिक की परीक्षा के पश्चात उन्हें

कॉलेज कोल्हापुर भेजा गया। जिस समय वे वकालत कर रहे थे तो पिता का साया उनके सिर से उठ गया।

जत्ती जी खेल-कूद के शौकीन थे। साहित्य के प्रति भी गहरा लगाव था किंतु वे वकील बने। समय पाते ही वे सार्वजनिक सेवा कार्यों में जुट जाते। लगभग चार वर्ष तक वे ग्राम पंचायत के माध्यम से सेवा करते रहे। कानून की पढ़ाई पूरी कर वे वकालत करने लगे। उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण शीघ्र ही उनकी गिनती जमखन्डी के लोकप्रिय वकीलों में होने लगी।

अनेक शुभचिंतकों के आग्रह पर वे नगर पालिका चुनाव में खड़े हुए व सभापति मनोनीत किए गए।

प्रजापरिषद् की ओर से चुनाव में भाग लिया और निर्विघ्न मंत्री पद पर चुने गए। उनके द्वारा किए गए सेवा कार्यों की सुगंध चारों दिशाओं में फैल रही थी। जनता बहुत अच्छी तरह जानती थी कि उसके लिए क्या सही है? फलतः वे मुख्यमंत्री बना दिए गए।

जत्ती जी खादी के पक्षधर थे। अपने राजनैतिक जीवन के प्रारंभिक काल में अनेक ऐसे अवसर आए, जब उन्हें खादी वस्त्र पहनने के कारण धमकाया गया किंतु वे निर्णय पर अडिग रहे व खादी को उसकी प्रतिष्ठा दिलाकर ही दम लिया।

अक्टूबर, 1949 में वे संसदीय सचिव नियुक्त हुए। भारतीय गणतंत्र के पहले चुनावों में वे जमखंडी मतदान क्षेत्र से विधान सभा के सदस्य चुने गए।

उनका अनुभव बढ़ रहा था। कार्यक्षमता में भी दुगनी तेजी आ गई। उन्हें मंत्रिमंडल में आरोग्य व श्रम विभाग में उपमंत्री बना दिया गया। "भू सुधार मंडल" की रिपोर्ट ने उनकी विलक्षण सोच का परिचय दिया और वह विधान का अंग बनी। सन् 1958 ई० में वे राज्य के मुख्यमंत्री बनाए गए। सन् 1962 से 1965 तक वे राज्य के वित्तमंत्री भी रहे।

पांडिचेरी के लेफ्टिनेंट गर्वनर बनने के पश्चात वे सन् 1972 में उड़ीसा के राज्यपाल नियुक्त हुए। इस दौरान उन्होंने उड़ीसा राज्य के प्रशासन की कई खामियों को दूर किया। राज्य की कई रुकी हुई विकास योजनाओं को पुनः लागू किया गया।

31 अगस्त, 1974 को वे भारत के उपराष्ट्रपति पद पर सुशोभित हुए। उन्होंने 11 फरवरी, 1977 से 25 जुलाई, 1977 तक राष्ट्रपति पद पर भी अस्थायी रूप से कार्य किया।

श्री नीलम संजीव रेड्डी

(25-7-1977—25-7-1982)

"मैंने यह फैसला किया है कि भारत के राष्ट्रपति के रूप में मिलने वाले वेतन में से मैं प्रतिमाह 7,000 रु० छोड़ दूँगा व इसके बाद मुझे जो भी वेतन मिलेगा, उस पर एक साधारण नागरिक की भाँति ही आयकर दूँगा। मैंने राष्ट्रपति भवन को छोड़ कर एक साधारण मकान में रहने का फैसला किया है, जिससे राष्ट्रपति पद की गरिमा को किसी प्रकार की आँच नहीं आएगी। मैं राष्ट्रपति भवन में होने वाले खर्चों में कटौती करूँगा। मैंने सरकार से एक ऐसा स्थान खोजने का आग्रह किया है, जहाँ मैं और मेरे कर्मचारी कम खर्चे में सुविधाजनक रूप से रह सकें।"

उक्त शब्द कहे थे, भारत गणराज्य के छठवें राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने। वे राष्ट्रपति पद के लिए निर्विरोध चुने गए थे। कुछेक उम्मीदवार खड़े अवश्य हुए किंतु उनके पर्चे अवैध माने गए क्योंकि वे नियमानुसार नहीं भरे गए थे।

श्री नीलम संजीव रेड्डी का जन्म 19 मई, सन् 1913 को आंध्रप्रदेश के छोटे से गाँव "इल्लरू" में हुआ। यह स्थान अपने सूखे के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध था। शायद ही कोई वर्ष ऐसा बीतता था जिस वर्ष सूखा न पड़ता हो।

रेड्डी जी के पिता श्री "चिनप्पा रेड्डी" का परिवार, देशभक्तों का परिवार था। सारे इलाके में उनके परिवार को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था

सम्पन्न व प्रतिष्ठित चिनप्पा जी का व्यवसाय कृषि था। कृषि से होने वाली आय ही उनके भरण-पोषण का साधन थी। बालक रेड्डी ने बाल्यकाल से ही लहलहाते खेतों व उनके पीछे छिपे अथक परिश्रम को देखा था। यही बात उनके मस्तिष्क में बस गई कि किसी भी कार्य की सफलता में निन्यानवे प्रतिशत हाथ, परिश्रम का ही होता है। शेष एक प्रतिशत किस्मत काम आती है।

रेड्डी जी के माता-पिता चाहते थे कि उनके पुत्र की शिक्षा-दीक्षा भली-भाँति हो। अतः उन्होंने प्रारंभ से ही इस ओर ध्यान दिया। वैसे देखा जाए तो किसी भी बालक के निर्माण में माता-पिता की अहम् भूमिका होती है, क्योंकि वे ही बालक के अच्छे-बुरे की पहचान रखते हैं।

बालक की प्रारंभिक शिक्षा अडयार के थियोसोफिकल स्कूल में हुई। यहीं से उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा पास की। अपने विद्यार्थी जीवन में रेड्डी जी ने पढ़ाई के साथ-साथ खेल-कूद पर भी पूरा ध्यान दिया। चंचल बालक की गति व स्फूर्ति देख सभी चकित रह जाते।

किसान पुत्र होने के कारण बालक में वे सब बुरी आदतें नहीं पनप पाई जो प्रायः धनाढ्य वर्ग के बच्चों में पाई जाती हैं।

रेड्डी महोदय अपने स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री सी० बी० सुब्बाराव को प्रायः याद करते थे। सुब्बा राव जी ने अपने इस प्रतिभावान छात्र की प्रतिभा निखारने में पूरा सहयोग दिया। उन्होंने रेड्डी जी के भीतर छिपे तेज को पहचाना और उसे अनुशासन, स्नेह, वाक्पटुता, संयम, धैर्य आदि गुणों से महिमामंडित कर दिया।

हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे आर्ट्स कॉलेज मद्रास मे पढ़ने लगे किंतु पढ़ाई अधिक समय तक नहीं चल पाई। भारत माँ के आह्वान को ठुकराना सहज न था।

नमक कानून-भंग का आंदोलन जोरों पर था। रेड्डी जी भी स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। नतीजन वे गिरफ्तार हुए और जेल भेज दिया गया।

इसके पश्चात उन्होंने स्वतंत्र रूप से पढ़ाई पूरी की। वे भाषण देने की कला में निपुण थे। तेलुगु व अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार था।

कॉलेज के दिनों में ही एक रोचक घटना घटी। उन दिनों गाँधी टोपी धारण करना अपराध माना जाता था। एक छात्र कॉलेज में वह टोपी पहन

कर आया, बस फिर क्या था, कक्षा से निकल जाने का दंड दे दिया गया।

गाँधी जी के समर्थक, रेड्डी जी इस अपमान को कैसे सह सकते थे? उनके नेतृत्व में कॉलेज के लगभग तीन सौ विद्यार्थी सअभियान में जुट गए। रातों-रात सभी ने गाँधी टोपियाँ सिलवा लीं। अगले दिन देखने वाला समाँ था। सभी के सिरों पर टोपियाँ थीं। सजा मिलती भी तो कितनों को मिलती ?

धीरे-धीरे रेड्डी जी अपनी भाषण कुशलता के कारण जन साधारण में छाते चले गए। जब वे अपनी ओजपूर्ण वाणी में भाषण देते तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो उठते। उनकी यही विशेषता सरकार की आँखों में चुभने लगी। सन् 1940 में उन्हें छह मास कारावास का दण्ड दिया गया।

छह माह बीते, सजा की अवधि समाप्त हुई। रेड्डी जी को त्रिचनापल्ली की जेल से रिहा किया गया। अभी भीतर वाले फाटक से बाहर आए ही थे कि एक अधिकारी ने पुनः जेल जाने का हुक्मनामा थमा दिया। उस मार्मिक दृश्य की कल्पना करें। बाहरी द्वार पर पत्नी दो बच्चों सहित, पति की प्रतीक्षारत थीं। रेड्डी जी ने भी उन्हें देख लिया था किंतु चाह कर भी उनसे मिल नहीं सकते थे। कुछ ही क्षणों में वे पुनः सलाखों के भीतर थे।

बाद में एक भेंटवार्ता में उन दुखद पलों को याद करते हुए रेड्डी जी ने कहा—

"मैं उन्हें देख सकता था, क्योंकि अब इनके और हमारे बीच केवल एक गेट था, पर उनसे मिल नहीं सकता था; क्योंकि मिलने की इजाजत नहीं थी। इतनी दूर से, इतने मील की यात्रा करके आना; आ कर भी न मिल सकने की असमर्थता। पत्नी बहुत छोटी उम्र की थीं—मुश्किल से बीस-बाईस वर्ष की। उसने बहुत ही दृढ़ता दिखाई। विवशता और वेदना उसने जरा भी प्रकट नहीं होने दी।"

करीब दो वर्ष तक उन्हें बेलूर व अमरावती की जेलों में बंद रखा गया। इस दौरान रेड्डी जी को कई महान व्यक्तियों का स्नेह व सहयोग प्राप्त हुआ।

"भारत छोड़ो आंदोलन" में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई। कैदी बनाए गए। जवाब-तलब हुआ तो गाँधी जी की शिक्षा ने असत्य कथन नहीं करने दिया। उनकी अंतरात्मा ने सोचा कि झूठ बोल कर यहाँ तो बच जाएँगे किंतु गाँधी जी के सम्मुख सिर उठाना भी दूभर हो जाएगा, यही सोच कर उन्होंने झूठ नहीं बोला। सन् 1945 तक वे जेल में बंद कर दिए गए।

श्री रेड्डी जी महात्मा गाँधी के प्रबल अनुयायी थे। गाँधी जी की प्रेरणा से ही उन्होंने खद्दर को अपनाया। गाँधी जी से उनकी प्रथम भेंट का वर्णन, उन्हीं के शब्दों में सुनें–

"मैं उन दिनों मैट्रिक में था, जब महात्मा गाँधी हमारे शहर में आए थे। मैं उसी समय बंगलौर से, अनन्तपुर अपने जिले में आया था...."

तभी देखा सारा शहर उमड़ रहा था, गाँधी जी के दर्शनों के लिए मैं भी भीड़ के साथ चल पड़ा। महात्मा गाँधी जी के सामने भीड़ लगी थी। सब कुछ न कुछ उन्हें भेंट कर रहे थे। वे अपने पास कुछ न रख कर, हर चीज नीलाम कर देते थे। मेरे देखते-देखते एक शाल, एक पेंटिंग व एक सिल्वर कास्केट गाँधी जी को भेंट किया गया..

मेरी बोली आखिरी थी। शाल, पेंटिंग और सिल्वर कास्केट तीनों अब मेरे थे। सबकी दृष्टि मेरे ऊपर लगी थी। मेरे मित्र पीछे से मुझे ढकेल रहे थे कि मैं आगे जाकर तीनों चीजें महात्मा गाँधी से ले लूँ, पर मेरे पैर मन भर के हो रहे थे। कारण मैं विदेशी कपड़े पहने हुए था। खद्दर के सिवा किसी दूसरी पोशाक में महात्मा गाँधी जी के पास जाना मुझे बड़ा ही लज्जाजनक लगा। फिर भी किसी तरह आँखें झुकाए उनके पास पहुँचा और तीनों चीजें ले आया, किन्तु उसके बाद मैं सीधे खादी की दुकान पर पहुँचा और अपने लिए खादी के कपड़े खरीदे।"

श्री रेड्डी जी ने कम्युनिस्टों के बढ़ते प्रभाव को रोकने की प्राण-पण से चेष्टा की। कम्युनिस्ट, जनता को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काते थे। यदा-कदा वे हिंसा का प्रयोग भी करते थे। श्री रेड्डी सन् 1931 से ही कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे। सन् 1936 में उन्हें आंध्रप्रदेश प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का मंत्री भी बना दिया गया। फलतः उन्हें कम्युनिस्टों का कोप भाजन बनना पड़ता।

अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले रेड्डी महोदय चुपचाप मार खाते रहे। धैर्य चुकने लगा तो वे नेहरू जी के पास समाधान हेतु जा पहुँचे और समाधान मिल भी गया। नेहरू जी ने उनसे कहा–

एक ही जवाब है। जब हम लोग साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ रहे थे, तो अहिंसक थे, किन्तु हमारे अपने साथी ऐसा व्यवहार करें, तो आप आत्मरक्षा में जो कर सकते हैं, करें।"

सन् 1946 में हुए आम चुनावों में वे मद्रास विधानसभा के सदस्य चुने गए। अगले ही वर्ष उन्हें मद्रास कांग्रेस विधायक दल का सचिव बनाया गया।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ तो वे संविधान सभा के सदस्य बनाए गए। उन्होंने संविधान बनाने में अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया। सन् 1949 में उन्हें पहली बार राज्य मंत्रिमंडल का सदस्य बनाया गया। उन्हें मद्य-निषेध मंत्रालय व आवास और वन विभाग सौंपे गए। अपने कार्यकाल के दौरान रेड्डी जी ने अभूतपूर्व लगन व कर्मठता का परिचय दिया। उनके अथक प्रयासों से मद्रास में नशाबंदी भी लागू की जा सकी।

इस विभाग में कार्य करते अभी दो ही वर्ष बीते थे कि जीवन-दिशा में एक और परिवर्तन आया। आंध्रप्रदेश कांग्रेस के सदस्यों में आपसी मतभेदो से केंद्रीय सरकार बेहद चिंतित थी। उनके प्रयत्नों के बाद भी स्थिति में कोई सुधार नहीं आ रहा था। ऐसी स्थिति में श्री रेड्डी को यह महती कार्य सौंपा गया। वही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जो दल की टूटती एकता को बाँध सकते थे। श्री रेड्डी ने स्वेच्छा से मंत्रिपद से त्यागपत्र दे दिया। अपने अभियान में वे शत-प्रतिशत सफल हुए। परस्पर मतभेदों को दूर कर अपूर्व स्नेह एवं प्रशंसा पाई। परिणामतः उन्हें आंध्रप्रदेश कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष चुना गया।

इसी बीच विधाता ने उनको दुखों के सागर में ढकेल दिया। उनका पाँच वर्षीय, मासूम-सा पुत्र सड़क दुर्घटना में काल कवलित हो गया। श्री रेड्डी का हृदय पुत्र की अकाल मृत्यु से व्यथित था। उन्होंने प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया किंतु उनका त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया गया। आत्मीय सहयोगियों की बात वह टाल न सके और त्यागपत्र वापिस ले लिया।

उसी वर्ष वे कांग्रेस संसदीय बोर्ड के सदस्य चुने गए। अगले वर्ष वे राज्य सभा के लिए चुने गए। 1952 के आम चुनावों में कांग्रेस की भारी जीत हुई। श्री रेड्डी विधान सभा के सदस्य चुने गए। मंत्रिमंडल का गठन हुआ तो उन्होंने अपने से वरिष्ठ श्री टी० प्रकाशम को मुख्यमंत्री पद का दावेदार बताया।

यदि श्री रेड्डी सत्तालोलुप होते तो उस क्षण का उपयोग करने में विलंब न करते किन्तु उन्होंने तो स्वयं ही पद का दावा छोड़ दिया। श्री टी० प्रकाशम मुख्यमंत्री बने और रेड्डी जी ने उपमुख्यमंत्री के रूप में कार्य-भार संभाला।

प्रकाशम महोदय केवल दो वर्ष तक ही कार्य कर सके क्योंकि वे स्वयं प्रजा पार्टी में थे तथा विधान सभा में कांग्रेस का बहुमत था। पुनः कांग्रेसी

नेता के चुनाव का प्रश्न सामने आ गया।

श्री रेड्डी निर्विरोध चुने जाते किंतु श्री गोपाल रेड्डी भी उनके मुकाबले में खड़े हो गए। कांग्रेस के नेता नहीं चाहते थे कि अध्यक्ष पद के लिए चुनाव हो। दोनों उम्मीदवारों से अपील की गई कि एक व्यक्ति स्वेच्छा से अपना नाम वापिस ले ले।

श्री गोपाल रेड्डी पीछे हटने को कतई तैयार न थे किंतु सदा के धीर-गंभीर-त्यागी नीलम संजीव रेड्डी एक बार फिर आगे आए और दल के प्रति निष्ठा का परिचय देते हुए अपना नाम वापिस ले लिया। यदि यही भावना प्रत्येक व्यक्ति में आ जाए तो यह धरती निश्चय ही स्वर्ग से भी सुंदर हो जाएगी।

सन् 1956 में आंध्रप्रदेश के विस्तार का निर्णय लिया गया। अब तक रेड्डी जी तमिलनाडु की राजनीति में थे किंतु इस वर्ष वे पुनः राज्य की राजनीति में आए। बिना किसी विघ्न या बाधा के, उन्हें आंध्रप्रदेश का मुख्यमंत्री पद सौंप दिया गया।

तेलंगाना निवासी उनसे अनजान अवश्य थे परन्तु कहते हैं न कि किसी श्रेष्ठ व्यक्ति की महक दूर तक जाती है। जनता ने तुमुलनाद से अपने मुख्यमंत्री का स्वागत किया।

श्री रेड्डी जी ने भी जनता के विश्वास को ठेस नहीं लगने दी। वे करीब दो-तीन वर्ष तक उस पद पर रहे और अपनी योग्यताओं व कार्यक्षमता के बल पर राज्यवासियों का कल्याण किया।

रेड्डी जी की प्रशंसा नेहरू जी तक भी पहुँची। नेहरू जी व्यक्ति की परख जानते थे। उन्होंने नीलम संजीव रेड्डी के आंतरिक गुणों को पहचाना और उन्हें ऐसे कार्यक्षेत्र सौंपे, जहाँ से वे अपनी प्रतिभा व कर्मठता का प्रदर्शन कर सके।

श्री रेड्डी जी को नई दिल्ली में, सर्वसम्मति से अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। श्रीमती इंदिरा गाँधी ने रेड्डी जी की प्रशंसा में कहा कि वे एक उत्साही नेता व कुशल प्रशासक हैं।

सन् 1962 तक वे उस पद पर रहे। तत्पश्चात आंध्रप्रदेश की राजनीति में लौटे। दल की स्थिति शोचनीय थी। तब उन्हें मुख्यमंत्री बना कर भेजा गया। रेड्डी जी हारने वालों में न थे। उन्हें कहीं भी भेजा जाता, वे हर कठिनाई का सामना करते। साहस से, धैर्य से।

वहाँ वे दो वर्ष तक मुख्यमंत्री पद पर रहे। सर्वोच्च न्यायालय ने एक

विवाद में सरकार के विरुद्ध निर्णय दिया। हालाँकि रेड्डी जी का इस विवाद से कोई लेना-देना न था किंतु उनका संस्कारी चित्त पद पर रहने को तैयार न था। उन्होंने पद से त्यागपत्र दे दिया। नैतिक मूल्यों के प्रति ऐसी निष्ठा व आस्था मिलना सहज नहीं होता।

सन् 1964 से 1966 ई० तक वे केंद्रीय मंत्रीमंडल में रहे। वहाँ उन्हें स्टील व खान विभाग सौंपा गया।

नेहरू जी की मृत्यु के पश्चात भूतपूर्व प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री जी के मंत्रिमंडल में वे उड्डयन मंत्री के रूप में कार्यरत रहे।

सन् 1967 में रेड्डी जी लोकसभा अध्यक्ष बनाए गए।

तत्कालीन राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसैन का हृदय-गति बंद हो जाने से देहांत हो गया। राष्ट्रपति का चुनाव होना था। श्रीमती गाँधी चाहती थीं कि जगजीवन राम जी को राष्ट्रपति बना दिया जाए किंतु कांग्रेस के अन्य वरिष्ठ नेता उनके विपक्ष में थे।

श्रीमती गाँधी ने रेड्डी जी को समर्थन नहीं दिया। उपराष्ट्रपति श्री गिरि भी मुकाबले में उठ खड़े हुए। एक अन्य प्रत्याशी श्री सी० डी० देशमुख भी थे।

श्रीमति गाँधी के असहयोगपूर्ण व्यवहार ने कांग्रेस में मतभेद उत्पन्न कर दिया। वे प्रकट रूप में श्री गिरि के पक्ष में प्रचार कर रही थीं। परिणामतः गिरि महोदय की विजय हुई।

राजनीति में बहुत फेर-बदल हुआ। कांग्रेस दो दलों में बँट गई। पुरानी कांग्रेस में श्री मोरारजी देसाई, श्री निजलिंगप्पा, श्री रेड्डी, श्री कामराज, श्री पाटिल आदि शामिल थे

श्रीमति गाँधी नई कांग्रेस की नेता बनीं। वह काल भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि उसी समय इमर्जेंसी लागू की गई थी।

रेड्डी जी इन राजनीतिक दाँव-पेंचों से ऊब गए थे। सही मायनों में देश सेवा करने वाले कार्यकर्त्ता सदैव राजनैतिक पंक से निर्लिप्त रहकर प्रसन्न रहते हैं। वे भी उन्हीं में एक थे।

उन्होंने अपने गाँव के फार्म हाऊस में रहने का निश्चय कर लिया जो कि उनकी पैतृक संपत्ति था किंतु भारतीय संस्कृति सदा यही कहती है कि अन्याय सहना व सहकर मौन रहना भी एक अपराध है। रेड्डी जी को जब

लगा कि पानी सिर से ऊपर जा रहा है तो एक देशभक्त सेनानी के कदम रुक न सके और वे एकांतवास त्याग कर पुनः राजनीति के अखाड़े में कूद पड़े।

अपनी उसी मनोस्थिति का वर्णन करते हुए एक भेंटवार्ता में स्वयं उन्होंने कहा—

"आपको विश्वास नहीं होगा, बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस के साथियों से मैंने इंदिरा जी के पक्ष में एक लड़ाई लड़ी थी...

हम सब सीनियर हैं, इसलिए हमें पाँच साल के लिए उन्हें एक और मौका जरूर देना चाहिए। इसी प्रश्न पर मैंने पुरानी कांग्रेस से त्यागपत्र भी दे दिया था।

मैंने यह भी कहा था कि पाँच साल की इस अवधि में मैं एक शब्द भी नहीं बोलूँगा। एक भी भाषण तो दूर, आंतरिक मामलों के संबंध में एक इशारा भी नहीं करूँगा। मैं शहर से दूर अपने छोटे से गाँव के फार्म पर चला गया था...

मैंने एक वायदा किया था और मैं उसे निभा रहा था, किन्तु इस बीच जो कुछ घटा उससे लगा कि मेरा दम घुट रहा है...

मैंने अपने से ही प्रश्न किया कि हम या हमारे जैसे दूसरे वरिष्ठ राजनीतिज्ञ क्या खेती ही करते रहेंगे ? क्या बागवानी ही में लगे रहेंगे ?...

मुझे आशा नहीं थी मैं बचा रह पाऊँगा, किन्तु तानाशाही तरीकों को रोकने के लिए किन्हीं को तो विरोध करना ही पड़ेगा।"

"हमारे छठवें राष्ट्रपति
नीलम संजीव रेड्डी" से साभार

सन् 1977 के चुनावों में एक बार फिर रेड्डी जी को अध्यक्ष पद के लिए चुना गया। राष्ट्रपति के चुनाव के लिए सभी के मुख पर एक ही नाम था "श्री नीलम संजीव रेड्डी"

तब रेड्डी जी ने कहा कि—

"यदि सभी राजैतिक दल उनका समर्थन करेंगे तभी वे चुनाव लड़ेंगे अन्यथा नहीं"

सभी दलों ने सहर्ष समर्थन दिया। रेड्डी जी ने 25 जुलाई 1977 को संसद

के केंद्रीय भवन में पद व गोपनीयता की शपथ ग्रहण की। वे एक अनुशासन प्रिय, कर्मठ नेता थे। नियमों में बंधकर जीना ही उन्हें पसंद था। छोटा या बड़ा, चाहे कोई भी हो; नियम सबके लिए समान होने चाहिये।

उनका कहना था कि राष्ट्रपति पद पर आसीन होने वाले व्यक्ति को सदा स्वार्थ व दल-गत राजनीति से विमुख होना चाहिए। स्वतंत्रता-पर्व की पूर्व संध्या पर प्रसारित, राष्ट्र के नाम संदेश से कुछ अंश—

''भारत का राष्ट्रपति बनने से पहले मैं एक किसान था। धूप और वर्षा में अपने खेतों में काम करता था। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि पीने का पानी, शिक्षा, चिकित्सा सुविधाएँ व स्वास्थ्य सेवाएँ तथा संचार जैसी जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे करोड़ों देशवासियों को किन-किन दिक्कतों व कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।''

यदि हमें एक राष्ट्र के रूप में सामूहिक तौर पर सफल होना है तो हमें व्यक्तिगत स्तर पर अच्छे उदहारण रखने होंगे। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस प्रकार के मामलों में ऊपर से पहल की जानी चाहिए।

भारत हमेशा से जीवन और चिंतन के सभी क्षेत्रों में विविधताओं का देश रहा है। इस विविधता में एकता ने सारे विश्व के सभ्य समाज में हमें प्रतिष्ठा का स्थान दिलाया है। हमें इस बहुमूल्य विरासत की व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से रक्षा करनी है।''

रेड्डी महोदय ने 25 जुलाई, 1982 को अपना कार्यकाल समाप्त किया।

श्री ज्ञानी जैल सिंह

(25-7-1982—25-7-1987)

"मैं पत्थर तोड़ सकता हूँ और सड़क बना सकता हूँ। मैं मकान की दीवार बना सकता हूँ। मैं अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहता। मैं कुआँ खोद सकता हूँ...

मैंने एक बार गुरुग्रंथ साहिब के लिए लकड़ी की एक पालकी बनाई थी जिसकी लोगों ने अत्यधिक प्रशंसा की थी और उसे कला का एक उत्कृष्ट नमूना बताया था।"

यह शब्द हैं हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय ज्ञानी जैल सिंह जी के। इन शब्दों से झलकती सादगी व भोलापन ही उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक है। ज्ञानी जैल सिंह जी भारत के सातवें राष्ट्रपति थे। अपनी अलौकिक प्रतिभा व गुणों के बल पर, आज भी उन्हें उतने ही आदर व सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है।

इनका जन्म 5 मई, 1916 को पंजाब के फरीदकोट जिले के संघवान गाँव में एक सामान्य कृषक परिवार में हुआ। इनके पिता सरदार किशन सिंह जी अधिक समय तक पुत्र पर स्नेह वर्षा नहीं कर पाए। जैल सिंह जी की आयु केवल छह वर्ष की ही थी, जिस समय उनके पिता परलोक सिधार गए।

माता ही जैल सिंह जी के जीवन का आधार बनीं। उन्होंने ही पुत्र का पालन-पोषण किया। भारतीय संस्कृति, देश-प्रेम, कर्मठता, दृढ़ता, आत्म विश्वास व स्वाभिमान सरीखे गुण, इन्हें माँ से विरासत में मिले। जैल सिंह जी स्वयं स्वीकारते थे कि वे जो कुछ भी बन पाए, वह उनकी माता जी के ही आशीर्वाद का फल था

जैल सिंह जी को बचपन में विद्यालय जाने का अधिक अवसर नहीं मिल पाया। उन्होंने ग्रन्थी बनने का निश्चय किया। गुरुग्रंथ साहिब, कुरान, गीता आदि धार्मिक ग्रंथों के गहन अध्ययन-मनन ने आपके जीवन को एक नई दिशा दी व आप गुरुग्रंथ साहब के व्यावसायिक वाचक बन गए। इस क्षेत्र में जन-साधरण की समस्याओं से रू-ब-रू होने का मौका भी मिला।

भारत की माटी के पुत्र जैल सिंह जी की जड़ें मिट्टी से जुड़ी थीं। अतः वे मेहनतकश किसान की विवशताओं को भली-भाँति समझते थे।

किंवदंती है कि सन् 1938 में जब वे लाहौर जेल में बंदी थे तो इनके बचपन के नाम जनरैल सिंह का रूपांतरण "जैल सिंह" हो गया। कारण चाहे कोई भी रहा हो किंतु उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की और वही नाम लोकप्रिय हो गया। जनरैल सिंह जी ज्ञानी जैल सिंह कहलाने लगे।

जैल सिंह जी के हृदय में देश के लिए अपार प्रेम एवं त्याग की भावना थी।

बात उन दिनों की है जब जैल सिंह केवल सोलह वर्ष के थे। शहीद भगत सिंह को फाँसी की सजा सुना दी गई। वह वीर स्वतंत्रता सेनानी हँसते-हँसते भारत माँ की आन के लिए कुर्बान हो गया था।

ज्ञानी जी इस घटना से द्रवित हो उठे। बाल्यकाल से ही दबी-ढकी विद्रोह की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो उठी। उन्होंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि भारत की आजादी, उनके जीवन का लक्ष्य होगा, चाहे प्राण ही क्यों न चले जाएँ।

महात्मा गाँधी के नमक सत्याग्रह व अन्य आंदोलनों ने चेतना जाग्रति में मदद की। बस उस प्रण के पश्चात जैल सिंह जी ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। उन्होंने अनेक क्रांतिकारियों से संपर्क साधा व उनके साथ निर्भीकता-पूर्वक, स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े।

जैल सिंह जी ने फरीदकोट में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना करने का प्रयास किया। तत्कालीन वातावरण में राजनीतिक पार्टी का गठन या जन जागरण का कार्य सहज न था। इस महती अभियान में अनेक बाधाएँ आईं।

महाराज फरीदकोट भी इस तरह की सभाओं के पक्ष में न थे। उन्होंने कांग्रेस की स्थापना पर प्रतिबंध लगा दिया किंतु ज्ञानी जी भी कम न थे। उन्होंने अपना कार्य पूरा करके ही दम लिया।

परिणाम की परवाह न करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचने वाले ही सच्चे सेनानी कहलाते हैं। ज्ञानी जी भी उन्हीं में से एक थे। उन्हें अपराधी करार दे दिया गया। कुछ समय पश्चात जैल सिंह जी को पाँच वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया।

यह सन् 1938 का समय था। कारावास में जैल सिंह जी पर जो ज्यादतियाँ हुई, उन्हें लिखते-लिखते हाथ काँप जाता है। उनसे 17-18 घंटे काम लिया जाता था। शरीर बेड़ियों से इस कदर जकड़ा रहता कि हिलना-डुलना भी मुहाल था परंतु उन्होंने उफ तक न की।

कैद की अवधि समाप्त होते ही जैल सिंह जी पुनः अपने गंतव्य की ओर चल पड़े। उन्होंने फरीदकोट शासन के विरुद्ध समानांतर सरकार की घोषणा कर दी। अत्याचारों का अंत न रहा। अनेक कठोर यातनाओं के पश्चात भी ज्ञानी जी अपने पथ से विमुख नहीं हुए।

तिरंगे को घर-घर पर लहराने की अद्‌भुत योजना मस्तिष्क में आते ही जैल सिंह जी का मन मुदित हो उठा।

उन्होंने नेहरू जी को इस पुनीत कार्य के लिए निमंत्रण दिया। जवाहर लाल नेहरू जी भी जैल सिंह जी के साहसिक कारनामों को सुन चुके थे। वे सहर्ष रियासत में पधारे और सन् 1946 में, फरीदकोट के घर-घर पर प्यारा तिरंगा लहरा उठा। इस घटना के पश्चात जैल सिंह जी व चाचा नेहरू का संपर्क गहरा होता चला गया।

सन् 1946 में जैल सिंह जी को पैप्सू प्रजामंडल का अध्यक्ष बनाया गया। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात फरीदकोट रियासत भी "पैप्सू" में मिला दी गई। यह क्षेत्र पटियाला व पूर्वी पंजाब संघ में शामिल कर दिया गया। ज्ञानी जी भी इस कैबिनेट के सदस्य थे।

सन् 1948 में वे पैप्सू राज्य के राजस्व मंत्री बनाए गए तथा सन् 1952 में वे कृषि मंत्री बने। इस दौरान ज्ञानी जी ने अपनी अभूतपूर्व कार्य क्षमता का परिचय दिया। पंजाब की माटी के सपूत तो वे थे ही, अतः किसानों व मजदूरों आदि की समस्याओं को सुलझाने में, उन्होंने सदैव उत्साह दिखाया।

सन् 1956 में पैप्सू को पंजाब में मिला दिया गया। जैल सिंह जी उस समय पंजाब प्रदेश कांग्रेस कमेटी के मुख्याध्यक्ष थे, तभी उन्हें राज्य सभा के लिए भी निर्वाचित किया गया।

सन् 1962 में उन्हें पंजाब विधान सभा का सदस्य चुना गया। उनके कार्य के प्रति लगन व एकनिष्ठता को ध्यान में रखते हुए, उन्हें सरदार प्रताप सिंह कैरो के मंत्रिमण्डल में मंत्री बनाया गया।

जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो जैल सिंह जी ने अपना त्यागपत्र दे दिया। वे अपनी पूर्ण क्षमता के साथ पंजाब में समाज-सुधार के कार्यों में लगे रहे। राष्ट्र की सेवा ही उनका ध्येय थी।

सन् 1972 में इन्हें पंजाब का मुख्यमंत्री बना दिया गया। जैल सिंह जी ने 1972 से 1975 तक पंजाब को एक स्वस्थ व शक्तिशाली प्रशासन सौंपा। औद्योगिकरण व हरित क्रांति जैसे मुद्दों पर विशेष बल दिया गया।

जैल सिंह जी ने राज्य के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया। उनके कार्यकाल में लेखकों, कवियों, शहीदों को भरपूर मान व आदर मिला। शहीदों के स्मारक बनवाए गए। जैल सिंह जी सभी धर्मों को समान भाव से देखते थे। उनके कार्यकल में अनेक धार्मिक व महापुरुषों के चित्र होना, इस का पुष्ट प्रमाण है।

सन् 1977 में जैल सिंह जी को विरोधी पक्ष के अनेक दाँव-पेंचों का सामना करना पड़ा। अनेक आयोग बैठे किंतु विरोधी दल उनका बाल भी बाँका न कर सका, क्योंकि साँच को आँच नहीं होती।

अंत में परिणाम वही रहा जो होना चाहिए था। जैल सिंह जी पर लगाए गए सभी अभियोग बेबुनियाद निकले व विपक्ष को उनसे क्षमा-याचना करनी पड़ी।

सन् 1980 में ज्ञानी जी होशियारपुर से लोकसभा चुनावों में विजयी घोषित किए गए। इस समय इनकी निष्कलंक छवि व जन-लोकप्रियता बहुत काम आई। उन्हें केंद्रीय मंत्रिमण्डल में शामिल किया गया व गृह विभाग सरीखा महत्त्वपूर्ण पद सौंपा गया।

जैल सिंह जी को उस कार्यकल के दौरान अनेक कठिनाईयों व विषम परिस्थितियों से जूझना पड़ा।

असम समस्या मुँहबाए खड़ी थी। मई 1980 में ज्ञानी जी को इस समस्या का निराकरण सौंपा गया। ज्ञानी जी ने अपनी ओर से हर संभव प्रयास किया कि अप्रिय स्थितियाँ टाली जा सकें। उन्होंने असम के उत्तेजित नेताओं से वार्तालाप का अमनपूर्ण रास्ता अपनाया ताकि सरकार व उनके बीच चल

रहे मतभेदों व संप्रेषण की कमी को दूर किया जा सके।

कहते हैं कि फूल की सुगंध छिपाए नहीं छिपती। चाहे उसे जितना भी ढॅपो, छिपाओ किंतु वह अपना सौरभ बिखरेता ही रहता है। ऐसे ही फूलों में एक थे—"ज्ञानी जैल सिंह जी"

उनके कल्याणकारी कार्यों, साहसपूर्ण निर्णयों, सर्वधर्म समभाव दृष्टिकोण की चर्चा, श्रीमति गाँधी तक भी पहुँची और ज्ञानी जी राष्ट्रपति पद के दावेदार चुने गए।

उन्होंने नौ विपक्षी दलों के संयुक्त उम्मीदवार श्री हंसराज खन्ना को पराजित किया। उन्हें 72.7% मत प्राप्त हुए। 25 जुलाई, 1982 को उन्हे पद व गोपनीयता की शपथ दिलाई गई। इस प्रकार वे भारत गणराज्य के सातवें राष्ट्रपति बने।

राष्ट्रपति पद पर आसीन होने के पश्चात उन्होंने देश के नाम प्रसारित संदेश में कहा—

"यह मेरा कर्त्तव्य होगा कि देश के सभी प्रांतों तथा वर्गों के लोगों को एक समान समझूँ। देश की जंग-ए-आजादी में एक सिपाही के रूप में देश सेवा के क्षेत्र में आया था व अपने जीवन को अंतिम वर्षो तक देश सेवा के लिए पुनः समर्पित कर रहा हूँ। मैं भारतीय जनता का आभारी हूँ...

मैं चाहता हूँ कि जनता के दिलो दिमाग में देश भक्ति के साथ उनमे देश के विकास और उन्नति की भावना भर दूँ। दूसरे प्रदेशों के लोग, उनके धर्म, उनकी जातियाँ, उनकी विभिन्न भाषाएँ, एकता धारण करके देश को ऊँचा उठा कर इनमें स्नेह, प्यार, सहानुभूति और एकता उत्पन करें। हमें चाहिए कि राष्ट्र के निर्माण कार्यो में पूरी तरह से योग देकर देश से बेरोजगारी, गरीबी व आर्थिक अभाव को दूर करें।"

ज्ञानी जैल सिंह जी सदैव उस सत्य के साथ रहे जो शिवम् एवं सुंदरम होता है। उन्होंने कभी भी व्यक्ति को धर्म या मजहब के नाम पर बाँटने या तोलने का प्रयत्न नहीं किया। जब खालिस्तान आंदोलन ने गलत रूप धारण कर लिया तो सरकार को विवश हो कर हस्तक्षेप करना ही पड़ा। तब ज्ञानी जी ने कहा था—

"गुरुद्वारे और पवित्र अकाल तख्त साहब की ओट लेकर लड़ाईयाँ करना, यह कोई अच्छी बात नहीं है अतः हर गुणवान तथा खास तौर से वह जिनको

गुरु महाराज पर भरोसा है और जो सिख मर्यादा को अच्छी तरह मानते हैं, उनको भी दुख हुआ।''

मैं महसूस करता हूँ और सबकी सेवा में विनती करना चाहता हूँ कि आज हम एकता की तरफ चलें। सुलह की बातें करें, सुलह की बातें ही नहीं बल्कि सद्भावना समितियाँ बना-बनाकर हम वातावरण को ठीक करें और हममें फिर से एकता आए और जो भी किसी से गलतियाँ हुई हैं, उन गलतियों की माफी माँगना कोई पाप नहीं है।''

जैल सिंह जी के इन शब्दों ने अनेक पथभ्रष्ट व्यक्तियों को जीने की राह दिखाई। हँसमुख, हाजिरजवाब व सुदर्शन ज्ञानी जैल सिंह जी शेरो-शायरी के बेहद शौकीन थे। उनके भाषणों व साक्षात्कारों में ऐसे बहुत से शेर पढ़े जा सकते हैं जो उनकी वाक्पटुता व स्मरण शक्ति का अद्भुत् परिचय देते हैं। ज्ञानी जी ने राष्ट्रपति भवन में रहने पर भी अपनी सादगी को नहीं छोड़ा। वे अमीर-गरीब, छोटे-बड़े का भेद भूल कर सभी से प्रेम-भाव से मिलते थे।

ऐसे विलक्षण गुणों से युक्त ज्ञानी जी के पालन-पोषण के पीछे उनकी माँ की अथक साधना छिपी थी। वे अपनी माँ को बेहद चाहते थे और वही माँ जब मृत्यु-शैय्या पर थी तो पुत्र चाह कर भी उनसे मिल नहीं पाया। सलाखों में बंद जैल सिंह जी ने पैरोल पर जाना चाहा किंतु अधिकारी चाहते थे कि उनकी मजबूरी का लाभ उठा कर उनसे क्षमा याचना करवाई जाए।

ज्ञानी जी इस शर्त पर रिहा होने को तैयार न हुए। माँ के अंतिम दर्शन भी न हो सके और वे चल बसीं। भारत माँ के प्रति प्रेम व त्याग का इससे बड़ा उदहारण और कहीं नहीं मिल सकता।

ज्ञानी जी के लिए एक बार सिख साधु ने कहा था

''इक दिन ऐसा आवेगा
तुसी बादशावां दे बादशाह बनोगे''

सच, उसका कहना ही फल गया। ज्ञानी जी ने लाखों-करोड़ों दिलों पर राज किया। उनकी बादशाहत में दया, प्रेम व करुणा का साम्राज्य था। उनके विरोधी लाख चाहने पर भी उन्हें क्रोधित नहीं कर पाते थे। ज्ञानी जी का मुखमंडल आक्षेपों व छींटाकशी के बावजूद निर्मल व हास्यमयी बना रहता था।

उस त्यागी देशभक्त की पत्नी ने भी पति का पूरा साथ निभाया चार

संतानें हुईं। एक पुत्र व तीन पुत्रियाँ। सभी ने अपने जीवन के लक्ष्यों पर पहुँचकर ही दम लिया।

ज्ञानी जी सरीखे मानवता के पुजारियों से ही हमारा भारत महान कहलाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एकदम बदली हुई स्थितियों में भारतीय राजनीति ने अपनी दिशाएँ व उनके मार्ग तलाशने शुरू कर दिए। इस समय तक ज्ञानी जी प्रांतीय तथा राष्ट्रीय, दोनों ही स्तरों पर अपना स्थान बना चुके थे। प्रारम्भ में उन्होंने पंजाब प्रांत को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाया। आपने असेम्बली के चुनाव लड़े तथा हार-जीत के अनुभवों से बहुत कुछ सीखा।

सन् 1969 में वे श्रीमती गांधी से जुड़े तथा केन्द्रीय राजनीति में प्रवेश किया। सन् 1972 से 1977 तक वे पंजाब के मुख्यमंत्री रहे। कुछ समय तक पंजाब कांग्रेस का नेतृत्व भी किया। सन् 1977 में जब 'जनता लहर' आई और कांग्रेस सत्ता से हटी तो पूरे देश में राजनीतिक हवा बदल गई। इन्दिरा जी पर मुकदमा चला तो उनके साथी भला कैसे बच सकते थे ? ज्ञानी जी जिस निष्ठा के साथ विषम स्थितियों में भी इंदिरा जी के साथ बने रहे, उसे सभी जानते थे। परिणामस्वरूप ज्ञानी जैल सिंह पर भी मुकदमा चला। 'शाह कमीशन' ने उनके लिए एक रिटायर्ड जज श्री गुरुदेव सिंह को नियुक्त किया। जज ने जब ज्ञानी जी को गवाहों के कटघरे में खड़े होकर सशपथ बयान देने को कहा तो वे अड़ गए। बोले—

"मंत्री बनते समय गोपनीयता की जो शपथ ली थी, उसे नहीं तोड़ूंगा। फैक्ट्स डिस्क्लोज नहीं करूँगा।"

विरोधस्वरूप वे निश्चित तिथि पर जज के सामने उपस्थित ही नहीं हुए। जज ने कुपित होकर उन्हें वारण्ट भेजकर पकड़वा बुलाया तथा सशपथ बयान देने को विवश करने लगे, किन्तु ज्ञानी जी थे कि अपनी हठ पर डटे ही रहे।

'जनता लहर' भंग होने के बाद जब श्रीमती गांधी पुनः सत्ता में आई तो ज्ञानी जैल सिंह को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में गृहमंत्री का महत्वपूर्ण पदभार सौंपा गया। राष्ट्रपति चुने जाने के समय वे गृहमंत्री के रूप में कार्य कर रहे थे।

ज्ञानी जैल सिंह का राष्ट्रपति पद का सम्पूर्ण कार्यकाल अनेक कठिनाइयों, संघर्षों और विवादों से परिपूर्ण रहा है। वे राष्ट्रपति के रूप में जब राष्ट्रपति भवन पहुँचे तो वहाँ की को अपने ढंग से एक नया रूप प्रदान किया

उन्होंने अपने विचारों और कार्यो से लोगों की इस धारणा को असत्य सिद्ध कर दिया कि वे 'कठपुतली राष्ट्रपति' बनकर रहेंगे।

उनके कार्यकाल में घटी घटनाओं में अक्टूबर, 1984 में श्रीमती गांधी की हत्या तथा जून में इससे पूर्व 'ऑपरेशन ब्लूस्टार' सबसे ज्यादा उल्लेखनीय घटनाएँ रही हैं। सिख धर्म तथा पंजाब से सम्बद्ध होने के कारण उन्हें दोनों ही पक्षों की आशंकाओं और दबावों का शिकार बनना पड़ा। कहने की आवश्यकता नहीं है कि हर कठिन घड़ी और तनाव की मनःस्थिति मे भी ज्ञानी जी ने अपना संयम, सन्तुलन और शालीनता को नहीं छोड़ा।

श्रीमती गांधी की मृत्यु के बाद उन्होंने श्री राजीव गांधी को प्रधानमंत्री पद पर मनोनीत कर उस विषय स्थिति को विवादास्पद बनने से बचाया। ऐसा लगा, स्थितियाँ अब ठीक हो जाएँगी। कुछ समय सब कुछ ठीक चला, पर आपके कार्यकाल के अन्तिम चरण में विषमता और विवाद भीतर ही भीतर घुटने लगे। इसका कारण यही था कि कुछेक मामलों में आपने अपने स्वतत्र निर्णय के अधिकार का उपयोग किया। आपने संसद में पारित 'डाक विधेयक, 1986' को सरकार को बिना स्वीकृति के ही लौटा दिया, जिसमे सरकार को यह अधिकार दिए जाने का प्रावधान था कि वह किसी भी पत्र, तार आदि को खोल सकती है। इधर प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की नीतियों से असन्तुंष्ट विपक्षी नेताओं ने 18 फरवरी, 1986 को राष्ट्रपति को ज्ञापन प्रस्तुत किया। दूसरी ओर प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति के बीच औपचारिक संबंधों के स्वरूप को लेकर एक नया विवाद उठ रहा था।

राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह को इस बात की शिकायत थी कि प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी महत्वपूर्ण मामलों और निर्णयों की नियमित और समुचित जानकारी उन्हें नहीं दे रहे हैं। ऐसा करके वे न केवल राष्ट्रपति की उपेक्षा कर रहे हैं, बल्कि वे संविधान में उल्लिखित प्रधानमंत्री के दायित्वों को भी तोड़ रहे हैं। इस संबंध में ज्ञानी जी ने 9 मार्च, 1987 को प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखकर उनका ध्यान संविधान के अनुच्छेद 74 तथा 78 की ओर आकर्षित किया। उनका कहना था कि मिज़ोरम समझौते की जानकारी उन्हें अखबारों से मिली तथा बार-बार आग्रह करने के बावजूद भी उन्हें ठक्कर आयोग की रिपोर्ट भी नहीं बतलाई गई। इतना ही नहीं, रक्षा सौदों के सम्बन्ध में भी उन्हें सीमित सूचनाएँ दी गईं। अन्तिम दिनों में इस विषय पर व राष्ट्रपति के बीच अनेक बार भेंटें भी हुईं पर फिर भी स्थितियाँ

बिल्कुल सहज नहीं बन पाई। राष्ट्रपति जैल सिंह इस बात से भी अप्रसन्न थे जब उन्होंने श्री के. के. तिवारी को इस टिप्पणी पर कि राष्ट्रपति भवन में आतंकवादी ठहरते हैं तथा श्री जैल सिंह को उनका प्रश्रय प्राप्त है, श्री राजीव गांधी का ध्यान खींचा तो उन्होंने बजाय भर्त्सना करने या कोई उचित कार्यवाही करने के श्री के. के. तिवारी को मंत्री बना दिया।

अनेक विपक्षी नेताओं ने राष्ट्रपति से आग्रह किया कि वे श्री गांधी को प्रधानमंत्री पद से बर्खास्त कर दें अथवा उनके खिलाफ मुकदमा चलाने की अनुमति प्रदान करें, किन्तु इन सब स्थितियों में भी ज्ञानी जैल सिंह बहुत ही शान्त रहे तथा स्थितियों का जायजा लेते रहे। उनके कार्यकाल की पूर्व संध्या तक राजनीतिक क्षेत्र में यह अटकलें लगाई जाती रहीं कि राष्ट्रपति कुछ न कुछ अवश्य करेंगे, पर उन्होंने कुछ नहीं किया। उन्होंने बहुत ही शालीनता, संयम, उदारता और धैर्य का परिचय देते हुए लोगों की सभी धारणाओं को गलत सिद्ध कर दिया। वे चाहते तो कोई भी कदम उठाकर श्री राजीव गांधी से अपना 'राजनीतिक बदला' ले सकते थे, पर उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। इससे निश्चय ही उन्होंने राष्ट्रपति पद की गरिमा को बढाया है।

ज्ञानी जैलसिंह बहुत हँसमुख व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। भाषणों और बातचीत में बार-बार शेरो-शायरी का प्रयोग करना उनका स्वभाव है। उन्होंने प्रायः अपने भाषण हिन्दी में ही दिए हैं। उनका घर हिन्दी लेखकों, साहित्य प्रेमियों और पत्रकारों का स्थान ही बन गया।

ज्ञानी जी की पत्नी, जो घर-परिवार में 'बीबीजी' के नाम से ही जानी जाती हैं, अपने पति के समान ही बहुत धार्मिक संस्कारों वाली महिला हैं। वे बहुत शालीन तथा मितभाषी हैं। उनके तीन पुत्रियाँ जोगिन्दर कौर, गुरुदीप कौर तथा मंजीत कौर हैं।

धार्मिक स्वभाव के होने पर भी श्री जैल सिंह ज्योतिष पर विश्वास नहीं करते। वे पुरुषार्थ और कर्म के महत्व को स्वीकार करते हैं। राष्ट्रपति जैसे उच्च पद पर आसीन रहते हुए भी अपने छोटे से छोटे कर्मचारी के प्रति पूर्ण रूप से संवेदनशील बने रहे। व्यक्तिगत रूप से ज्ञानी जी अच्छा भोजन तथा सुखमय जीवन व्यतीत करने के शौकीन रहे हैं। बीच में अस्वस्थ हो जाने के बाद उन्होंने अपने जीवन और खानपान को बहुत ही संयमित कर लिया था इस संयमी आचार-विचार के कारण ही इतनी बडी आयु में भी वे शरीर

से पूरी तरह से स्वस्थ और चुस्त दीख पड़ते हैं। श्री जैलसिंह हमेशा साधारण लोगों के बीच ही रहे। उनके कंधे से कंधा मिलाकर जीवन के हर संघर्ष को सहा। आम मेहनतकश आदमी को जितना वे समझते थे, उतना अन्य कोई नहीं।

खेत और झोंपड़ी के सामान्य जीवन से उठकर राष्ट्रपति भवन की भव्य ऊँचाइयों तक की ज्ञानी जी की जीवन यात्रा भारत के जनसाधारण के लिए गर्व ही नहीं, प्रेरणा की बात है।

राष्ट्रपति पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी वे राष्ट्र की मूल धारा से जुड़े रहेंगे तथा उनके विचारों का लाभ देश को मिलता रहेगा, ऐसा विश्वास उन्होंने अपने अन्तिम विदाई संदेश में देशवासियों को दिलाया।

श्री रामास्वामी वेंकटरमन

(25-7-1987—25-7-1992)

पूरे राष्ट्र का अध्यक्ष राष्ट्रपति कहलाता है। राष्ट्रपति के पद की गरिमा तो विशाल है ही किंतु इस पद से जुड़े कर्त्तव्य भी कुछ कम नहीं हैं। इन कर्त्तव्यों के उचित व सुबोध निर्वाह हेतु "श्री रामास्वामी वेंकटरमन" जी को भारतीय गणतंत्र का आठवाँ राष्ट्रपति मनोनीत किया गया।

उनका जन्म तमिलनाडु के एक गाँव में 4 दिसंबर, 1910 में हुआ। वे बचपन से ही कुशाग्र व मेधावी छात्रों में एक रहे। प्रत्येक कक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त की। पढ़ने-लिखने में अव्वल होने के साथ-साथ वे खेलों के भी शौकीन रहे। युवावस्था तक बैडमिंटन, क्रिकेट व फुटबॉल, उनके प्रिय खेल थे।

श्री वेंकटरमन को अपना कार्य स्वयं करने का अभ्यास था। छोटे-छोटे कार्यों के लिए नौकरों पर निर्भर रहना सख्त नापसंद था। यहाँ तक कि राष्ट्रपति बनने के बाद भी वे अपनी नियमबद्ध दिनचर्या व स्वनुशासन को भूल नहीं पाए। सुबह छः बजे जागने व रात ग्यारह बजे तक सोने का नियम कभी नहीं टूटा।

शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात वे मद्रास हाईकोर्ट में एडवोकेट के रूप में कार्यरत रहे। उन्होंने इंडस्ट्रियल रिलेशन लॉ में विशेष दक्षता प्राप्त की।

वेंकटरमन जी ने "भारत छोड़ो आंदोलन" में भाग लिया। इसके फलस्वरूप उन्हें जेल भी जाना पड़ा। जेल से लौटने के पश्चात सन् 1950 में उन्होंने राजनीति में सक्रिय रूप से प्रवेश किया। पहले-पहल वे कांग्रेस के लिए एक सेवक के रूप में सेवा करते रहे किंतु बाद में वह दिन भी आया जब नेहरू

जी उन्हें अपने खास व्यक्तियों में गिनने लगे।

राजनीति में ही कई ऐसे मुद्दे सामने आए जहाँ वेंकटरमन जी की निष्पक्ष राय से विशेष लाभ हुआ। उनकी कर्मठता, ईमानदारी, सादगी, कार्य के प्रति निष्ठा, सरलता व परिश्रम ने नेहरू जी को आकर्षित किया। वेंकटरमन नेहरू जी की नीतियों व कार्यक्रमों के प्रशंसकों में एक थे।

नेहरू जी ने उन्हें लगभग दस वर्षो तक "यूनाइटेड नेशन्स" की जनरल असेंबली में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत होने का अवसर प्रदान किया।

तत्पश्चात वे उद्योग मंत्री बने। उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान तमिलनाडु के औद्योगिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्हें आज भी तमिलनाडु के औद्योगिकरण का जनक कहा जाता है। उनके ही प्रयासो के फलस्वरूप तमिलनाडु राज्य में महत्त्वपूर्ण उद्योग स्थापित हुए।

सन् 1957 से 1967 के दौरान उद्योग मंत्री बनने के बाद उन्होंने श्रम मंत्रालय भी संभाला। राजनीति में पुनः प्रवेश करने पर वे वित्तमंत्री व रक्षामंत्री भी रहे। अपनी योग्यता व निष्पक्षता के बल पर शीघ्र ही वे उप-राष्ट्रपति पद के लिए चुने गए।

उपराष्ट्रपति व राज्य सभा के सदस्य बनने के बाद वेंकटरमन जी ने राज्य सभा सदस्यों को उनके जन्मदिवस की शुभकामनाएँ भेजने की परंपरा आरंभ की। सभी ने इसका खुले दिल से स्वागत किया। यूँ तो उन्हें अपना जन्मदिन मनाना कभी नहीं भाया किंतु राष्ट्रपति बनने के पश्चात उस औपचारिकता का निर्वाह आवश्यक हो गया।

जिन दिनों उन्हें राष्ट्रपति पद का दावेदार चुना गया वे तत्कालीन राजनीति में उलझनों से भरे थे। भूतपूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह व प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी के संबधों में कटुता का आभास होने लगा था।

15 जून, 1987 को कैमरे व फ्लैश लाईटों और अनेक गणमान्य राजनीतिज्ञों के बीच नामांकन पत्र भरा गया। 16 जुलाई को दोपहर के समय परिणाम घोषित किए गए। वेंकटरमन जी ने संभावित अनुमान से 36,000 मत अधिक प्राप्त किए।

25 जुलाई 1987 को उन्होंने राष्ट्रपति के रूप में कार्य-भार

उन्होंने देश के महान महापुरुषों को श्रद्धांजलि दी और कहा कि वे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० राधाकृष्णन व डॉ. ज़ाकिर हुसैन जी की परंपरा का पालन करेंगे।

उन्होंने महान तमिल कवि सुब्रमण्यम भारती की पंक्तियाँ भी उद्धृत कीं, जिसमें उन्होंने कहा था—

The plant of freedom
was regred not with water
but with the tears.

श्री रामास्वामी वेंकटरमन जी ने राष्ट्रपति पद की महत्ता को बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। विशाल एवं भव्य राष्ट्रपति भवन उनके स्वागत में बाँहें फैलाए था। उनकी पत्नी जानकी वेंकटरमन ने भी पति के प्रत्येक शुभ कार्य में सहर्ष साथ दिया। पुत्रियाँ पद्मा व लक्ष्मी भी पिता की ही भाँति संस्कारवान् एवं विदुषी थीं।

वेंकटरमन जी ने विभिन्न राज्यों के दौरों के कारण होने वाले व्यय पर रोक लगाने की चेष्टा की। वे नहीं चाहते थे कि दिखावे के कारण राष्ट्रीय संपत्ति का नुकसान हो। वे सदैव प्रयत्न करते थे कि अतिविशिष्ट व्यक्तियों की आवाजाही के कारण आम जनता को परेशानी न हो।

लोगों से घुलना-मिलना, शिकायतें सुनना व उनकी मदद करना उन्हें अच्छा लगता था। उनके पाँच वर्षीय राष्ट्रपति काल में देश ने चार प्रधानमंत्री बदले। अनेक विकट समस्याएँ आईं जिनमें तमिलनाडु, श्रीलंका, पंजाब व बोफोर्स आदि से जुड़ी समस्याएँ प्रमुख थीं।

राष्ट्रपति जी ने बुद्धिमत्ता व राजनीतिक कुशलता से समस्याओं का निराकरण किया। संविधान व विधि की अद्भुत एवं गहरी पकड़ ने उन्हें उत्तेजित परिस्थितियों में भी धैर्यवान बनाए रखा।

वे भारतीय दर्शन, कला, धर्म व साहित्य के विद्वान थे। प्रत्येक विषय में उन्हें बेहद दिलचस्पी थी। रात को सोने से पहले कुछ देर तक पठन-पाठन की अभिरुचि ने जानकारी को विस्तृत एवं समृद्ध किया।

उन्होंने राष्ट्रपति भवन में छोटा-सा चिड़ियाघर बनवाया। उन्हें मृग शावकों व खरगोशों से खेलना अच्छा लगता था भवन के फलों के बाग मे उन्होंने

बहुत उम्दा किस्म के पेड़ लगवाए। उनके लगवाए केले के गाछों ने जब फल देना शुरू किया तो सब आश्चर्यचकित हो गए। एक-एक वृक्ष पर दो-दो सौ केले लगते थे।

इसके अलावा रंग-बिरंगे फूलों की बहार भी राष्ट्रपति भवन में छा गई। वे पेड़-पौधों की देखभाल स्वयं करते थे।

वेंकटरमन जी ने अनेक देशों की यात्रा की। जहाँ भी वे गए, भारतीयता की सोंधी गंध, उनके साथ रही। जिम्बाबवे, जांबिया, तंजानिया, भूटान, पुर्तगाल, यू० के० आदि देशों ने राष्ट्रपति महोदय का सत्कार किया।

वे सुयोग्य प्रबंध व सेवाओं के वितरण में उदार थे। भवन के स्टाफ का प्रत्येक कर्मचारी उनके व्यवहार से प्रसन्न था।

उन्होंने अपनी सेवानिवृत्ति की घोषणा के पश्चात निजी पुस्तकों का विशाल संकलन, विभिन्न संस्थाओं व पुस्तकालयों को दान कर दिया। कई स्थानों से मिले मूल्यवान उपहारों को राष्ट्रपति भवन में बने संग्रहालय में संजो दिया गया। उन्होंने कार्यकाल पूरा होने के पश्चात मद्रास में रहने का निश्चय किया ताकि वे राजनीतिक वातावरण से दूर रहकर सादगीपूर्ण जीवन जी सकें व उनके चारों ओर सुरक्षाकर्मियों की भीड़ न हो। 25 जुलाई, 1992 को उनका कार्यकाल पूर्ण हो गया।

डॉ० शंकरदयाल शर्मा

(25-7-1992—25-7-1997)

"पत्रकारिता का एकमात्र उद्देश्य सेवा होना चाहिए। समाचार पत्र एक बडी शक्ति हैं किंतु जिस प्रकार मुक्त प्रचंड जलधारा पूरे गाँव को जलमग्न कर फसल का सर्वनाश का देती है। उसी प्रकार एक अनियंत्रित लेखनी काम तो करती है पर विनाश का। यदि बाहरी नियंत्रण हुआ तो यह नियंत्रणविहीन लेखनी से भी अधिक विषैली साबित होती है। यह तभी लाभप्रद होती है जब इसका नियंत्रण आंतरिक हो।"

डॉ० शंकरदयाल शर्मा—'प्रतिष्ठित भारतीय'

उपरोक्त शब्द हैं भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा के। वे एक प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, सुयोग्य प्रशासक व वरिष्ठ राजनेता भी थे।

शंकरदयाल जी का जन्म 19 अगस्त, 1918 ई० को भोपाल में हुआ। वे एक उच्च मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार से संबंध रखते थे।

उनके पित श्री खुशीलाल शर्मा एक वैद्य थे। शिव के परम भक्त होने के कारण उन्होंने पुत्र का नामकरण 'शंकर' ही किया।

डॉ० शर्मा की माता जी का देहावसान उनके छात्र जीवन में ही हो गया था। तत्पश्चात उनकी माता जी की चचेरी बहन संपतबाई उनकी माँ बनीं। संपतबाई जी ने कभी भी अपने व्यवहार में सौतेलेपन का प्रदर्शन नहीं किया। उन्होंने चार पुत्रों को जन्म दिया

बालक शंकर की कुशाग्र बुद्धि को देखते हुए एक ज्योतिषी ने जन्मकुण्डली बनाते समय घोषणा की थी कि बालक भविष्य में उच्च पद प्राप्त करेगा, क्योंकि उसकी कुंडली में राजयोग है।

डॉ० शर्मा की प्रारंभिक शिक्षा रामकृष्ण पाठशाला में हुई। दो वर्ष तक विरजीनिया स्कूल में पढ़ने के पश्चात वे भोपाल के अलेक्जेंड्रा हाई स्कूल में जाने लगे। सन् 1933 में उन्होंने प्रथम श्रेणी में, सेंट जॉन्स कॉलेज, आगरा से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1937 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० की प्रथम श्रेणी की डिग्री प्राप्त की।

उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की गहरी चाह थी। लखनऊ विश्वविद्यालय मे एक साथ एम० ए० अंग्रेजी व एल० एल० बी० में प्रवेश ले लिया।

अचरज की बात नहीं है। उन्होंने वे दोनों परीक्षाएँ भी सन् 1939 मे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। कई व्यक्तित्व ऐसे भी होते हैं जो अपने भीतर परत-दर-परत अनेक प्रतिभाएँ छिपाए रहते हैं। इस पढ़ाई के पश्चात वे एल० एल० एम० में प्रवेश पाने के लिए कोर्ट में प्रैक्टिस करने लगे।

उसके बाद वे एल० एल० डी० के शोधकार्य में जुट गए। अक्टूबर 1945 में डॉ. शंकर ने लंदन विश्वविद्यालय में अपनी उत्कृष्ट योग्यता का प्रदर्शन किया। फिर सन् 1945 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से एल. एल. डी. की उपाधि ली।

इस दौरान डॉ० शंकर अपने अनुभवों व ज्ञान कोष को निरंतर समृद्ध करते रहे। छात्र जीवन में उनका एक विवाह हुआ था। पुत्र सतीश भी जन्म ले चुका था किंतु उनकी पत्नी चल बसी। पुत्र सतीश के लालन-पालन का प्रश्न सामने था।

डॉ० शंकर जब विदेश से लौटे तो माता जी ने दूसरे विवाह का प्रस्ताव सामने रखा। समस्या की गंभीरता को देखते हुए वे दूसरे विवाह के लिए मान गए। सन् 1950 में विमला जी उनके जीवन में सहधर्मिणी के रूप में आई।

भारत माता अपने महान सपूत को पुकार रही थी। उस दिन पुकार को उपेक्षित कर देना सहज न था। डॉ० शंकर ने विदेश यात्रा से लौटते ही निर्णय ले लिया कि वे देश सेवा का व्रत लेंगे।

सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में भी डॉ० शंकर ने सक्रिय योगदान दिया था। सन् 1948 में श्री शर्मा ने सीहोर में आम सभा को संबोधित किया।

विलीनीकरण आंदोलन जोरों पर था। डा० शर्मा ने जान की परवाह न करते हुए इसमें भाग लिया। फलस्वरूप उन्हें जेल जाना पड़ा। जेल में भी शंकरदयाल जी तिरंगा फहराने से बाज न आए जबकि उस समय राष्ट्रीय झंडा फहराने की स्वतंत्रता न थी।

नवाबी शासन ने अनेक जुल्म ढाए। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी उनके अत्याचारों का शिकार हुईं। अंत में 1 जून, 1949 को भोपाल राज्य का भारत में विलय किया गया।

सन् 1952 में प्रथम आम चुनाव हुए। डा० शर्मा भी बैरसिया से चुने गए। वे भोपाल के मुख्यमंत्री बनाए गए। 34 वर्षीय डा० शंकर दयाल शर्मा के पास नवीन योजनाओं व रूपरेखाओं का अभाव न था।

उनके नेतृत्व में भोपाल राज्य ने आशातीत सफलता प्राप्त की। भोपाल राज्य के चहुँमुखी विकास में डा० शर्मा ने पूरी रुचि दर्शाई। वे हर संभव प्रयास करते थे कि भोपालवासियों की समस्याएँ अतिशीघ्र सुलझाई जाएँ।

ग्रामों के विकास पर भी पूरा ध्यान दिया गया। डा० शर्मा के कार्यकाल में चिकित्सा महाविद्यालय, स्नातकोत्तर कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज व अनेक स्कूलों की स्थापना की गई।

डा० शर्मा ने भोपाल को मध्यप्रदेश की राजधानी बनाने में पूर्ण योगदान दिया। सन् 1956 में वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बनाए गए। उन्होंने मध्यप्रदेश में शिक्षा के सुधार का बीड़ा उठाया। महिलाओं की पिछड़ी दशा का केवल एक ही कारण था वह था 'निरक्षरता'। डा० शर्मा ने इस कारण को पहचाना व महिलाओं के लिए बुनियादी प्रशिक्षण केंद्र खुलवाए। महिलाओ की उच्चशिक्षा के लिए महिला महाविद्यालय बनवाए गए।

डा० शर्मा भली-भाँति जानते थे कि स्वस्थ मस्तिष्क ही किसी राष्ट्र का भविष्य बन सकता है और उसके लिए आवश्यक है एक सुनियोजित शैक्षणिक विकास। वे चाहते थे कि शिक्षकगण निःसंकोच गाँव-देहातों तक भी पहुँचें ताकि कोई भी व्यक्ति साक्षरता के वरदान से वंचित न रहे।

सन् 1963 में उन्हें लोक-निर्माण मंत्री बनाया गया। यहाँ भी उनकी प्रशासनिक योग्यता का परिचय मिला। अनेक नवीन निर्माण किए गए। सन् 1971 में उन्होंने सर्व प्रथम लोक सभा में प्रवेश किया। सन् 1972 से सन् 1974 तक वे कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गए। सन् 1974 में वे केंद्रीय संचार मंत्री के रूप में चुने गए। उनके मंत्रित्व काल में डाक सेवा का विस्तार हुआ। पहाड़ी क्षेत्रों में डाकघर खोलने की योजनाओं पर कार्य हुआ।

सन् 1977 में जब वे इस दायित्व से मुक्त हुए तो उनके उल्लेखनीय कार्यों की एक लम्बी सूची हमारे सामने थी।

अगस्त 1984 में डा० शर्मा को आंध्रप्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया गया। आंध्रप्रदेश की तत्कालीन राजनैतिक गतिविधियाँ सरल न थीं।

राजनेताओं की आपसी उठा-पटक व षड्यंत्रों के बीच भी डा० शर्मा ने संयम व गंभीरता का पालन किया व सही समय पर अपनी निर्णायक क्षमता का उपयोग करते हुए, अप्रिय स्थिति को टाल दिया।

उनके इस सराहनीय प्रयास ने लोकतंत्र की मर्यादा की रक्षा की। इसी प्रकार वे 1985 में पंजाब तथा मार्च 1986 में महाराष्ट्र के राज्यपाल बनाए गए। उन्होंने बेहिचक समस्याओं को सुलझाया व अपनी स्वच्छ व निर्मल छवि बनाए रखी।

सितंबर, 1987 में डा० शर्मा भारत के उपराष्ट्रपति पद पर सुशोभित हुए। वे दलगत भावना से कोसों परे थे। उपराष्ट्रपति ही राज्य सभा का सभापति होता है। उन्होंने इस दायित्व का कुशलतापूर्ण निर्वाह किया। आगरा, विक्रम व भोपाल आदि विश्वविद्यालयों ने उन्हें मानद उपाधि से सम्मानित किया।

अनेक ऐसे प्रसंग सुनने में आए जिन्होंने सपष्ट कर दिया कि डा० शर्मा भारतीय गणतंत्र के रक्षकों में थे। सन् 1990 में निरंकुश कांग्रेस सदस्यों का वह व्यवहार आज भी सोचने पर मजबूर कर देता है कि क्या यही लोकतंत्र है ?

डा० शर्मा उन सदस्यों की कारवाई देख कर फूट-फूटकर रो पड़े थे और कहा था—

'जब तक मैं इस कुर्सी पर हूँ लोकतत्र की हत्या नहीं होने दूँगा आपके

द्वारा की जा रही यह हुड़दंग-लीला देशद्रोह के अलावा और कुछ नहीं है। जो लोग लोकतंत्र को नहीं बचा सकते वे देश को नहीं बचा सकते। कृपया देश के बारे में सोचिए। मैं और आप तो कुछ दिनों के लिए हैं, लेकिन इस देश में लोकतंत्र हमेशा रहने वाला है तथा यह देश आपकी इस गुंडागर्दी को कभी माफ नहीं करेगा...

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरा गला घोंट दें, गोली मार दें लेकिन लोकतंत्र को बचा लें।''

''डा० शंकर दयाल शर्मा; एक निर्विवाद राजनीतिज्ञ''
(करिश्मा तिवारी)

तत्पश्चात एक मंत्री ने डा० शर्मा को अध्यक्ष पद के अयोग्य कहा, साथ ही उनके करुणामयी रुदन को नाटक की संज्ञा दी गई।

इस घटना को ले कर उक्त मंत्री की काफी छीछालेदर हुई। अंततः उन्हें सदन में सबके सामने क्षमा-याचना करनी पड़ी।

इस पूरी कारवाई के दौरान डा० शर्मा तटस्थ बने रहे। वे उन महान आत्माओं में से थे जो प्रशंसा व निंदा के मोहमयी आवरण से बहुत दूर होती हैं। शंकर दयाल जी ने लंबे राजनैतिक जीवन में कभी भी अपने व्यक्तित्व को स्वार्थ के रंग में रंगने नहीं दिया। अनेक ऐसे अवसर भी आए जब वे अपने सगे-संबंधी व ईष्ट मित्रों की सहायता कर सकते थे किंतु उन्होंने कभी भी अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं किया।

13 जुलाई, सन् 1992 को भारत के नौवें राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव हुए। डा० शंकर दयाल शर्मा कांग्रेस (इ) प्रत्याशी थे। वे बहुमत से इस पद के लिए मनोनीत किए गए।

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायधीश एम० एच० कानिया ने राष्ट्रपति महोदय को 25 जुलाई, 1992 को पद व गोपनीयता की शपथ दिलवाई। डा० शर्मा ने संयत भाव से गरिमामयी स्थान ग्रहण किया व समस्याओं को सुलझाने में जुट गए।

वे एक कुशल राजनेता व कानूनविद होने के साथ-साथ एक

लेखक भी थे। उन्होंने जवाहर लाल नेहरू मेकर ऑफ मॉडर्न कामनवैल्थ, क्रांति द्रष्टा, कांग्रेस अप्रोच द इंटरनेशनल अफेयर्स आदि पुस्तकें लिखीं। उन्होंने सोशलिस्ट इंडिया ज्योति व इल्म-ए-नूर आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

उन्हें ईश्वर के अस्तित्व में पूर्ण आस्था थी। नवीन मानदंडों व प्रगतिशीलता के पथ पर चलते हुए भी पूजा-पाठ करना उनकी दिनचर्या का अंग था। उनकी पुस्तकों व लेखों के अध्ययन से पता चलता है कि वे भारतीय सभ्यता व संस्कृति की गूढ़ जानकारी रखते थे। अपने एक लेख "मंदिर संस्कृति के साकार रूप हैं" में वे लिखते हैं—

"धर्म जोड़ने वाला तत्त्व है, चाहे वह कोई भी धर्म हो, जो तोड़ता और भटकाता है, जो उकसाता है वह धर्म हो ही नहीं सकता। धर्म का अर्थ है—वह, जो धारण करने योग्य हो। हमारी लोकचेतना सहिष्णुता की लोकचेतना रही है। वह भविष्य में भी वैसी ही बनी रहनी चाहिए। जब भी इस चेतना को बरगलाने की कोई भी कोशिश हुई है, तब-तब हमारे यहाँ सांस्कृतिक पुनर्जागरण हुआ।

ऐसे चिंतक व समाज सुधारक सामने आए हैं, जिन्होंने हमारी लोकचेतना को सही रास्ता दिखाया। देश का प्रत्येक नागरिक इस बात को अच्छी तरह समझे व व्यवहार में लाए। साथ ही इसके लिए दूसरों को भी प्रेरित करे। विभिन्न धर्म, जाति, भाषा व क्षेत्र के बावजूद अंततः हम एक हैं और विविध ता में एकता का यही भाव हमारी सबसे प्रमुख पहचान है और सबसे बड़ी शक्ति रही है और उसे रहना है"—

"कादम्बिनी से साभार"

डॉ० शंकर दयाल शर्मा को खेलों के प्रति भी गहरा लगाव था। पिता ने पुत्र को तैराकी की शिक्षा भी दी थी। डा० शर्मा लखनऊ विश्वविद्यालय में तैराकी व नौकायन टीम के कप्तान भी रहे। इसके अतिरिक्त वे संगीत सम्मेलनों, कवि सम्मेलनों व सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी उत्साह व उमंग से हिस्सा लेते थे।

डा० शंकर दयाल जी विशुद्ध शाकाहारी थे। भारत के सर्वोच्च पद पर पहुँचने पर भी उनके जीने का तौर-तरीका वही रहा। ईश्वर की महती कृपया से उनके यहाँ बाद में दो पुत्रियाँ जयश्री एवं गीतांजलि तथा एक पुत्र आशुतोष का भी जन्म हुआ।

सन् 1985 में डा० शर्मा को जीवन की एक दुखदायी परिस्थिति का सामना करना पड़ा। उनकी प्रिय पुत्री गीतांजलि व ललित माकन की पंजाब के आतंकवादियों द्वारा निर्मम हत्या कर दी गई।

ललित माकन युवक कांग्रेस के नेता व सांसद भी थे। इस घटना से डा० शर्मा को गहरा सदमा पहुँचा।

शर्मा दंपत्ति ने इस हृदयघाती झटके को झेल लिया किंतु भीतर ही भीतर पति-पत्नी टूट से गए। इतने बड़े हादसे के बावजूद डा० शर्मा ने ईश्वर के प्रति आस्था में कमी नहीं आने दी। नित्य प्रति पूजन व ईश्वर-आराधना का क्रम कभी नहीं टूटा।

25 जुलाई, 1997 को उनका कार्यकाल समाप्त हो गया।

डॉ० के० आर० नारायणन

(25-7-1997—अब तक)

यदि एक सुविख्यात पत्रकार, प्रशासक, विलक्षण राजनयिक का नाम लेने को कहा जाए तो मैं निःसंदेह वर्तमान राष्ट्रपति "डा० के० आर० नारायणन" का नाम लेना चाहूँगी। आप इस पद के सर्वथा उपयुक्त हैं। नारायणन जी विशाल भारतीय गणतंत्र के दसवें राष्ट्रपति पद पर सुशोभित हैं। उनका पूरा नाम है 'कोचरिल रमन नारायणन' राष्ट्रपति के महिमामयी पद से पहले आप उपराष्ट्रपति पद पर आसीन थे।

के० आर० नारायणन जी का जन्म केरल के कोट्टायम जिले के उझाबूर गाँव में, 27 अक्टूबर, 1920 में हुआ। परिवार की आय के साधन पर्याप्त न थे। इनके पिता श्री के० आर० वाड़ियार एक आयुर्वेदिक चिकित्सक थे। कभी-कभी तो भोजन जैसी बुनियादी आवश्यकताएँ भी कठिनाई से पूरी हो पाती थीं।

प्रारंभिक शिक्षा कुरिचिन्तम में तथा आगे की पढ़ाई कुरविलंगडु में हुई। नारायणन जी की शिक्षा एक गंभीर प्रश्न बन कर सामने आ खड़ी हुई किंतु छात्रवृत्ति रूपी संबल ने समस्या को सहजता से सुलझा दिया। आप बाल्यकाल से ही जुझारू प्रवृत्ति के रहे। अनेक कष्टों के बाद भी शिक्षा के मार्ग में बाध ा नहीं आने दी।

सन् 1943 में आपने तिरुवनन्तपुरम विश्वविद्यालय से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की इस परीक्षा में स्थापित कीर्तिमान आज भी याद किया जाता है

शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आप एक व्याख्याता के रूप में कार्यरत रहे। भारतीय ओवरसीज विभाग में नौकरी भी की किंतु एक माह पश्चात नौकरी छोड़ दी। उसके पश्चात कुछ दिन तक आपने टाईम्स आफ इंडिया में संवाददाता के रूप में कार्य किया।

'लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स' से टाटा स्कालरशिप भी मिली। सन् 1949 में आपने भारतीय राजदूत के रूप में थाईलैण्ड, टर्की, चीन व अमेरिका आदि देशों की यात्रा की। हालाँकि सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध के पश्चात, राजदूत बनकर जाना सरल न था किंतु नारायणन जी ने कुशलता एवं सामंजस्य पूर्ण तरीके से संबंधों का निर्वाह किया।

श्री नारायण की धर्मपत्नी म्यांमार की रहने वाली हैं। विवाह से पहले उन्हें सुश्री "रिण्ट रिण्ट" के नाम से जाना जाता था किंतु विवाह पश्चात वे भी भारतीयता के रंग में रंग गई। अब उन्हें श्रीमति ऊषा नारायणन के नाम से जाना जाता है। वे भारत की प्रथम महिला नागरिक हैं। इनकी बड़ी पुत्री चिन्ता भारतीय विदेश सेवा में अधिकारी तथा छोटी पुत्री अमृता संयुक्त राज्य अमरीका में मीडिया क्षेत्र में कार्यरत हैं।

सन् 1992 में इन्हें सभी दलों ने एकमत से उपराष्ट्रपति पद के लिए चुना। नारायणन जी ने 25 जुलाई, 1997 को राष्ट्रपति के रूप में पदभार संभाला। यह दिन वर्षों से प्रतीक्षित था क्योंकि हमारे बापू की हार्दिक इच्छा थी कि भारत के सर्वोच्च पद पर दलित जाति का व्यक्ति हो और उनकी वह इच्छा उस दिन पूरी हुई। नारायणन जी को सभी दलों से समर्थन प्राप्त हुआ।

परिणाम घोषित होने के पश्चात श्री नारायणन जी ने विनम्र एवं मधुर स्वर में कहा—

'मैं सदा की भाँति आज भी विनीत हूँ'

नारायणन जी अपनी पूर्ण सामर्थ्य से देश के कल्याण में जुटे हैं। राष्ट्रपति जी अखंड भारत की सत्ता में विश्वास रखते हैं। वायुसेना केंद्र 'त्रिशूल' के परेड ग्राउण्ड पर एक संबोधन में उन्होंने कहा—

"यद्यपि हम शांति के पुजारी हैं फिर भी हमें अपनी सार्वभौमिकता की रक्षा पूर्ण शक्ति से करनी होगी हमारी सशस्त्र सेनाएँ सुरक्षा के प्रति हमारी

वचनबद्धता का प्रदर्शन कर रही हैं। हम युद्ध को प्रोत्साहित नहीं करते परंतु यदि हम पर युद्ध थोपे गए तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी सशस्त्र सेनाएँ पूर्व की भाँति इसका मुँहतोड़ जवाब देंगी।"

श्री० के० आर० नारायणन राष्ट्रपति के रूप में अपनी विलक्षण कार्यक्षमता व प्रतिभा, देश को सौंप सकें, यही मेरी कामना है।